THE BOOK WAS DRENCHED

राधास्वामी दयाल की दया
राधास्वामी सहाय

निज उपदेश

परम गुरु हुज़ूर महाराज

—प्रकाशक—

ास्वामी सतसंग सभा, दयालबाग़ (आगरा)

राधास्वामी संवत् १४३
सन् १९६१ ई०

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_186733
UNIVERSAL
LIBRARY

राधास्वामी दयाल की दया
राधास्वामी सहाय

निज उपदेश

परम गुरु हुज़ूर महाराज

— प्रकाशक —
राधास्वामी सतसंग सभा, दयालबाग़ (आगरा)

राधास्वामी संवत् १४३
सन् १९६१ ई०

(*All Rights Reserved*)

First Edition	1948	1000
Second Edition	1961	1000

PRINTED BY BABU RAM JADOUN, M.A.
AT THE DAYALBAGH PRESS, DAYALBAGH, AGRA

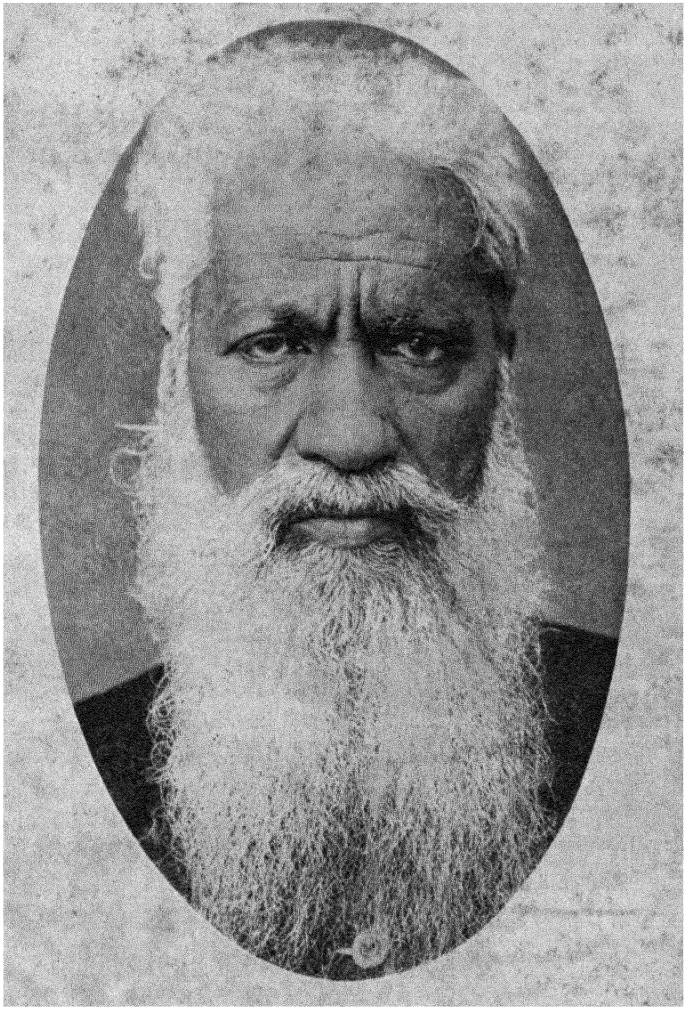

परम गुरु हुज़ूर महाराज

निवेदन

राधास्वामी मत के दूसरे पूज्य आचार्य परम गुरु हुज़ूर महाराज का जन्म १४ मार्च सन् १८२९ ई० को पीपल मंडी आगरा में हुआ था। सनू १८४७ ई० में उन्होंने डाक विभाग में सर्विस शुरू की और सन् १८८१ में वे पश्चिमोत्तर प्रदेश के पोस्टमास्टर जनरल नियुक्त हुए। इस ऊँचे पद पर नियुक्त होने वाले वे पहले हिन्दुस्तानी थे। १५ जून सन् १८७८ ई० को परम गुरु स्वामी जी महाराज के गुप्त होने पर वे राधास्वामी मत के दूसरे आचार्य हुए। सन् १८८७ ई० में उन्होंने सर्विस छोड़ दी। हुज़ूर महाराज ने ६ दिसम्बर सन् १८९८ ई० को गुप्त होने की मौज फ़रमाई।

परम गुरु हुज़ूर महाराज ने अपने समय में राधास्वामी मत पर बहुत सी पुस्तकें लिखने की मौज फ़रमाई। प्रेम बानी में, जो चार भागों में प्रकाशित हुई हैं, उनके लिखे शब्द हैं और उनके बचन व गद्य लेख प्रेमपत्र में, जिसके ६ भाग हैं, और कुछ छोटी पुस्तकों में शामिल हैं। उन्हीं छोटी पुस्तकों में से एक पुस्तक 'निज उपदेश' भी है। 'निज उपदेश' में भक्ति-मार्ग पर चलने वाले सज्जनों के लाभ के लिए बड़ी सरल व आकर्षक भाषा में संतमत की शिक्षा संक्षेप में दी गई है और सारबचन व प्रेमबानी के कुछ शब्द तथा सारबचन (नसर) के कुछ बचन और संतों की बानी के कुछ शब्द भी शामिल किए गए हैं। इस पुस्तक के पाठ से प्रेमीजनों के हृदयों में प्रेम व श्रद्धा बढ़ती है और हुज़ूर राधास्वामी दयाल की दया का भरोसा व विश्वास चित्त में दृढ़ होता है।

इस पुस्तक को प्रेमीजनों की सहूलियत के लिए राधास्वामी सतसंग सभा, दयालबाग़ (आगरा) की तरफ़ से प्रथम बार सन् १९४८ में प्रकाशित किया गया था। अब उसका दूसरा संस्करण प्रकाशित किया जाता है।

गुरुसरनदास मेहता
प्रेज़ीडेंट,
राधास्वामी सतसंग सभा।

दयालबाग़ (आगरा)
५ जनवरी १९६१ ई०

निज उपदेश

भाग १

सवाल १—मैं कौन हूँ और मेरा क्या स्वरूप है? यहाँ दुख सुख भोगता हूँ, कोई ऐसा भी स्थान है जहाँ निर्मल और अविनाशी और पूरन सुख और आनन्द प्राप्त होवे और मैं भी अमर हो जाऊँ और दुख और क्लेश का वहाँ नाम और निशान न होवे?

जवाब—तुम सत्तपुरुष राधास्वामी कुल मालिक की अंश हो। तुम्हारा सुरत स्वरूप ख़्वाह शब्द रूप है। यहाँ माया और काल के संबंध करके दुख सुख भोगते हो। जो सत्तलोक और राधास्वामी धाम में पहुँचो, तो अमर हो जाओ और वहाँ निर्मल और अविनाशी सुख और पूरन आनन्द प्राप्त होवे, और दुख और क्लेश वहाँ नहीं हैं।

सवाल २—वहाँ कौन रास्ता और कौन जुगत से पहुँचना हो सकता है?

जवाब—सुरत शब्द मार्ग की कमाई से यानी चित्त लगाकर अपने अन्तर में शब्द को सुन कर और शब्द की धुन या धार को पकड़ कर, जो घट घट में मौजूद है, रास्ता तै हो सकता है और रास्ता उसका नैन नगर में होकर जारी है और कई मुक़ाम रास्ते में पड़ते हैं।

सवाल ३—रास्ते का भेद और जुगत शब्द के सुनने की किससे

मालूम हो सकती है और क्या क्या संयम या लवाज़मे वास्ते चलने के उस रास्ते पर दरकार हैं ?

जवाब—संत सतगुरु या साधगुरू से, जो आप निज मुक़ाम पर पहुँचे हैं या कुछ रास्ता तै कर चुके हैं और धुर मंज़िल पर पहुँचने वाले हैं, भेद और जुगत चलने की मिल सकती है। उनके बचन की प्रतीति और उनके और सत्तपुरुष राधास्वामी के चरनों में प्रीति करने और उनकी सरन लेने से कमाई आसानी से बन सकती है। और संयम यह है कि सुरत चैतन्य है और यही सुख और आनन्द और ज्ञान और शब्द स्वरूप है। सो यह कितने ही खोलों अथवा परदों में इस देश में गुप्त और पोशीदा है, और यह खोल मन और माया के हैं। इन खोलों और उनके संबंधी गुणों यानी खसलतों में अटकना और बरतना दिन दिन कम करना और एक दिन प्रेमा भक्ती और अभ्यास की मदद से इनसे अलहदगी कर के निर्मल चैतन्य स्वरूप अपने में प्राप्त होना संयम और कमाई है। और वहाँ से निज धाम यानी सत्तलोक और राधास्वामी धाम में, जहाँ से आदि में सुरत आई थी, फिर पहुँचना चाहिए। इसको जीव का सच्चा और पूरा उद्धार कहते हैं।

सवाल ४—अभ्यास की हालत में जो दिक़्क़तें और विघ्न वाक़ै होते हैं, इसका क्या सबब है और उनके दूर करने के वास्ते क्या जतन दरकार हैं ?

जवाब—जिस क़दर विघ्न और मुश्किलें पड़ती हैं, वह बसबब मुहब्बत इस सुरत की साथ मन और माया और उनके खवास और गुन और पैदा किये हुए पदार्थों के हैं। बहुत अरसे से सुरत अपने निज धाम से उतर कर अनेक मुक़ामों में मन और माया के खोल अथवा देहियों और उनके पैदा किए हुए पदार्थों के संग रच पच गई है और माया के देश में, जहाँ अँधेरा है, उसमें फँस कर अपने निज घर और अपनी असली ताक़त और हालत और रूप को भूल गई है और मन और माया के संग यारी करके उसके पदार्थों में इसकी निहायत दर्जे की आसक्ति हो गई है। जिस क़दर जल्दी यह अपने घर के भेद

और उसके चलने की जुगत को समझ कर और उसकी सच्ची प्रीति करके अपने पिता राधास्वामी के चरनों में प्रीति दिन दिन ज़्यादा करके चलना शुरू करे और माया के पदार्थों और उसके बनाये हुए खोल अथवा देही में मुहब्बत कम करती जावे, उसी क़दर विघ्न जल्दी और आसानी से दूर हो सकते हैं। और जोकि सुरत यहाँ बहुत कमज़ोर है और अजान है, इस वास्ते मुनासिब है कि सत्तपुरुष राधास्वामी की दया और संत सतगुरु अथवा साध गुरू की मेहर लेकर और उनका प्रेम हृदय में जगा कर रास्ता तै करना शुरू करे। उनकी मदद से सब मुश्किलें आसान हो जावेंगी। और संसार में ज़रूरत के मुआफ़िक़ बरताव करे और मध्य की चाल चले और फ़ज़ूल ख़्वाहिशें वास्ते तरक़्क़ी संसार और उसके सामान के न उठावे, तो आहिस्ता आहिस्ता रास्ता कटता जावेगा और एक दिन यह निज घर में पहुँच जावेगी।

सवाल ५—सत्य और असत्य का क्या भेद है?

जवाब—शब्द अथवा सुरत चैतन्य है और यही सत्य है, और बाक़ी पसारा जो नज़र आता है सब मायाकृत और नाशमान है। और चैतन्य ही सुख और आनन्द स्वरूप है। और माया और उसके पदार्थ दुख रूप हैं, माया और चैतन्य की मिलौनी से पैदा हुए हैं। सो जब तक माया देश के पार सुरत न जावेगी तब तक निर्मल सुख और परम आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता है। और तीन लोक अथवा पिंड और ब्रह्मांड माया के देश में शुमार किए जाते हैं। इनके पार दयाल देश, यानी सत्तलोक व राधास्वामी धाम, है और वही अविनाशी सुख और परम आनन्द का देश है।

सवाल ६—सुरत का क्या स्वरूप है और शब्द का सुनना या ध्यान किस तरह से करना चाहिये?

ज़वाब—सुरत का जो असली स्वरूप है वह तो दसवें द्वार में पहुँच कर नज़र आवेगा, ज़बान से उसका वर्णन बख़ूबी नहीं हो सकता। मगर इस मुक़ाम पर, जैसा कि उसका ज़ाहिर से समझ में आता है, वह

शब्द और तवज्जह स्वरूप है, क्योंकि जहाँ जिस किसी की तवज्जह या ख़्याल या चित्त जाता है, वहीं उस शख़्स को समझना चाहिए, ख़्वाह कहीं बैठा हो और चाहे किसी से बातचीत करता होवे। और जब कोई मर जाता है तो कहते हैं 'बोलता' निकल गया, यानी जब तक कि शख़्स बोलता है, ज़िन्दा है। जब बोल बन्द हो गया, तब जान यानी सुरत निकल गई। इस वास्ते अभ्यासी को चाहिए कि अपने चित्त को अन्तरी स्वरूप और आवाज़ में लगावे और उस वक़्त दूसरा ख़्याल न आने देवे, वरना आवाज़ और स्वरूप का ध्यान ग़लत हो जावेगा।

सवाल ७—जो कोई संत मत का भेद नहीं जानते और सुरत शब्द का अभ्यास नहीं करते, उनकी सुरत देह को छोड़ कर कहाँ जावेगी?

जवाब—यह लोग दयाल देश में, जहाँ कि पूरन आनन्द हमेशा का हासिल होवे, नहीं जा सकते, मगर अपनी करनी और समझ और इष्ट के मुआफ़िक़ नीचे ऊँचे स्थान में संतों के तीसरे दर्जे में, जो कि ब्रह्मांड के नीचे है, और कोई कोई ब्रह्मांड, यानी दूसरे दर्जे के नीचे के हिस्से में भरमते रहेंगे और कोई काल सुख पाकर फिर देह में आवेंगे और फिर अपनी करनी के मुआफ़िक़, जैसी देह में बन पड़ेगी, ऊँची नीची जोन में नीचे के लोकों में पैदा होवेंगे। और फिर ठीक नहीं कि मनुष्य यानी इन्सानी जोन पावें या नहीं और कब पावें।

भाग २

१—जो दुनियाँ के हाल को ग़ौर करके देखा जावे, तो मालूम होता है कि सब जीव जन्तु सुख के हासिल करने की चाह रखते हैं और सब उस चाह के पूरा करने के लिये रात और दिन मेहनत कर रहे हैं।

२—जो सुख कि देहधारियों को इस संसार में हासिल होते हैं, वह सब इन्द्रियों के भोग हैं।

३–और इन्द्रियाँ स्थूल शरीर में हैं और यह शरीर और इन्द्रियाँ दोनों जड़ हैं। सुरत यानी रूह की चैतन्यता से चैतन्य शक्ति इनमें मालूम होती है।

४–और जो सुख कि इन्द्रियों के भोग हैं, वे सब नाशमान और थोड़ी देर का आनन्द और रस देने वाले हैं। बाद उसके फिर चाह उन्हीं भोगों की बार बार उठती है और हर दफ़ा उन भोगों के हासिल करने के वास्ते जतन और मेहनत करनी पड़ती है।

५–ग़ौर करने से यह भी मालूम होता है कि जिस क़दर आनन्द और रस और सुख इन्द्रियों का प्राप्त होता है, वह सुरत यानी रूह की धार के सबब से है, जो कि वक्त भोग करने के, जिस इन्द्री का वह भोग विषय है, उस इन्द्री के द्वारे पर आ बैठती है।

६–जो सुरत की धार किसी इन्द्री के स्थान पर न आवे, तो उस इन्द्री का रस बिलकुल नहीं मिलता है।

७–स्वप्न अथवा ख़्वाब देखने की हालत से मालूम होता है कि रस और आनन्द, जैसा कि जागने की हालत में इन्द्रियों के भोग भोगने के वक्त हासिल होता है, उसी क़दर स्वप्न अवस्था में भी प्राप्त होता है।

८–इससे ज़ाहिर है कि सर्व इन्द्रियों की शक्ति और रस और आनन्द अन्तर में मौजूद हैं, क्योंकि ख़्वाब के वक्त बाहर की इन्द्रियाँ और देह दोनों बेकार होती हैं और कोई पदार्थ भी बाहर मौजूद नहीं होता है।

९–यह भी ग़ौर करने से मालूम होता है कि जिस क़दर इल्म और विद्या और बुद्धि और चतुराई और कारीगरी और चालाकी वग़ैरह की बातें जारी हैं, वह सब आदमी ने जारी करी हैं, यानी सब किताबें और क़ायदे और पोशीदा भेद क़ुदरत का और ताक़त तीन गुण और पाँच तत्त्व और भी हाल आसमान और ज़मीन और तारागण और सूरज और चाँद और जानवर और बनस्पतियों वग़ैरह का, सब आदमी

ने ज़ाहिर किया है। और जितने मज़े और स्वाद और रस और आनन्द और ख़ुशी वग़ैरह हैं, वह सब सुरत की धार में हैं। इससे साबित हुआ कि सुरत कुल इल्म और ज्ञान और आनन्द और शक्ति और सिद्धि वग़ैरह का भंडार और ख़ज़ाना है।

१०—सुरत की धार शब्द की धार है, क्योंकि जहाँ धार है वहीं आवाज़ है। और यही धार जान की धार और नूर की धार है।

११—ग़ौर करने से यह भी नज़र आता है कि इस लोक में सुरत हर एक देह में कितनी ही तह या ग़िलाफ़ के अन्दर है और यह ग़िलाफ़ माया के उस पर वक्त उतार के अपने निज देश या स्थान से, जैसे जैसे माया के मंडल में होकर सुरत उतरती आई है, चढ़ गए हैं।

१२—और माया में बहुत से दर्जे हैं, यानी अति सूक्ष्म और कम सूक्ष्म और सूक्ष्म और स्थूल और ज़्यादा स्थूल और निहायत स्थूल वग़ैरह वग़ैरह।

१३—सुरत असल में चैतन्य और ज्ञान और आनन्द रूप है, पर माया के संग से अनेक धारें मिलौनी की पैदा हुई और वही धारें अनेक तरह की शक्ति की धारें हैं, जैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार वग़ैरह।

१४—और माया के मसालों की मिलौनी के सबब से ग़िलाफ़ पैदा हुए हैं। इन्हीं ग़िलाफ़ों का नाम देह है और इन ग़िलाफ़ों का संग और उनमें मुहब्बत करने से सुरत को सुख और दुख भोगने पड़ते हैं।

१५—असली रूप सुरत का माया और उसके ग़िलाफ़ों से बिलकुल अलहदा है। जैसे स्वप्न के वक्त सुरत को स्थूल देह के दुख सुख की ख़बर नहीं होती, और गहरी नींद में अन्तःकरण के दुख सुख की, जो सूक्ष्म शरीर में मालूम होते हैं, ख़बर नहीं होती।

१६—इससे साफ़ ज़ाहिर है कि जिस क़दर दुख सुख जीव भोगते

हैं, यह स्थूल और सूक्ष्म देहियों के संग से भोगना पड़ते हैं। असली रूप सुरत का देहियों के रूप से बिलकुल जुदा है।

१७—जो कोई देही के दुख और सुख से बचना चाहे और निर्मल और सच्चा और ठहराऊ आनंद और खुशी हासिल करना चाहे, तो उसको चाहिये कि जिस तरह मुमकिन होवे, देहियों के संग से सुरत की धार को अलहदा करके पहले सुरत के स्थान पर यानी दसवें द्वार में लौटावे।

१८—और फिर वहाँ से सत्तलोक और राधास्वामी धाम में, जहाँ कि सुरत का निज घर है और वही कुल सुरतों का भंडार है, पहुँचावे। तब उसको असली सुख और पूरन आनंद, कि जो कभी न घटे और न नाश होवे, प्राप्त होना मुमकिन है। और जोकि वहाँ कोई ग़िलाफ़ माया का नहीं है, तो वहाँ किसी तरह का कष्ट और क्लेश भी नहीं है।

१९—दुनिया के सुख जितने हैं, वह मलीन यानी कसीफ़ हैं और उनका रस और स्वाद देह और इन्द्री और कोई कोई अन्तःकरण तक मालूम होता है, मगर उनमें पूरी शांति नहीं होती है।

२०—और जो रूहानी सुख सुरत के देश में या उसके भंडार के देश में मिल सकता है, वह ब्रह्मांड में तो सुरत और सूक्ष्म मन को और दयाल देश में खास सुरत को प्राप्त होता है और वह हमेशा क़ायम रहेगा।

२१—इस पूरन सुख और आनन्द के हासिल करने के लिए सिर्फ़ एक दफ़ा जतन करना पड़ेगा और वह जतन यह है कि ग़िलाफ़ या परदों को फोड़ कर उनके पार अव्वल सुरत देश और फिर वहाँ से दयाल देश में जाना चाहिए।

२२—जब सुरत उलट कर एक दफ़ा दयाल देश में पहुँच जावे, तब फिर इस देश में, यानी माया और ग़िलाफ़ों के मंडल में, नहीं आवेगी और तब जन्म मरन से रहित हो जावेगी, क्योंकि मौत ग़िलाफ़

की है न कि सुरत की। यानी जब सुरत देह को छोड़ जाती है, तब यह देह जैसी असल में जड़ थी वैसी जड़ रूप होकर पड़ी रहती है। इसी हालत को मौत कहते हैं।

२३–सुरत के ऊपर जो ग़िलाफ़ चढ़े हुए हैं यह माया के हैं, सूक्ष्म और स्थूल वग़ैरह, और यही हर एक ग़िलाफ़ एक एक देह हो रहा है, मसलन् स्थूल ग़िलाफ़ स्थूल देह और सूक्ष्म ग़िलाफ़ सूक्ष्म देह वग़ैरह।

२४–यह सब ग़िलाफ़ सुरत की धार से, जो इनमें आती जाती है, ज़िन्दा और चैतन्य हैं। इस वास्ते इसी धार को, जो शब्द की धार है और वही जान और नूर की धार है, पकड़ कर चलना और चढ़ना, यानी ग़िलाफ़ों के पार जाना चाहिए। इस चलने की तरकीब को सुरत शब्द योग या सुरत शब्द अभ्यास कहते हैं।

२५–इस जगह तो यह सब ग़िलाफ़ देही कहलाते हैं और बाहर की रचना में यही ग़िलाफ़ जुदा जुदा मंडल हैं और हर एक मंडल उसी क़िस्म की देही के साथ मेल रखता है।

२६–इस लोक में सुरत कितने ही ग़िलाफ़ों में गुप्त रहती है। सबब उसका यह है कि यह असली देश सुरत का नहीं है। वह असली देश कितने ही ग़िलाफ़ यानी मंडलों के पार है।

२७–और जब तक इन ग़िलाफ़ों के पार सुरत न जावेगी, तब तक अपने निज घर, यानी अपने पिता सत्तपुरुष राधास्वामी के देश में, नहीं पहुँचेगी।

२८–और तब तक माया के देश में अन्दर किसी न किसी ग़िलाफ़ के क़याम इसका रहेगा और बसबब प्रीति उस ग़िलाफ़ के उसका जन्म मरन भी होता रहेगा, यानी जब जब ग़िलाफ़, जो कि माया के बने हुए हैं और वही देही रूप हैं, बदले जावेंगे, तब ही दुख होगा। और इसी का नाम जन्म और मरन है।

२९–और जोकि दुख सुख की धारें बसबब मिलौनी सुरत और

माया के हर एक ग़िलाफ़ के साथ लगी हुई हैं, वह सुख और दुख ग़िलाफ़ की प्रीति के सबब से सुरत को बराबर भोगने पड़ेंगे और सुरत जब तक इन ग़िलाफ़ों से जुदा न होवेगी, तब तक सच्चा उद्धार यानी सच्ची मुक्ति और सच्चा आनन्द हासिल न होगा।

३०—इस वास्ते जो कोई सच्चा और पूरा सुख और आनन्द चाहे, ख़्वाह मर्द होवे या औरत, उसको ज़रूर और मुनासिब है कि सुरत शब्द अभ्यास को करना शुरू करे। तब वह आहिस्ता आहिस्ता ग़िलाफ़ों से एक रोज़ जुदा हो जावेगा। सिवाय सुरत शब्द अभ्यास के और कोई सूरत ग़िलाफ़ों से जुदा होने की नहीं है।

३१—और जोकि ख़ास बैठक सुरत की स्थूल देह में दोनों आँखों के मध्य में अन्तर की तरफ़ है, जिसको तीसरा तिल और शिवनेत्र और नुक़्ता सवेदा भी कहते हैं, और वहाँ से दो धारें दोनों आँखों में आई हैं और यहाँ पर बैठकर सुरत तमाम पिंड और दुनियाँ की कार्रवाई करती है, इस वास्ते इसी दरवाज़े से रास्ता निज घर की तरफ़ चलने का शुरू होता है।

३२—सुरत की ताक़त और शक्ति निहायत है, यानी यही सुरत, जो कि सच्चे मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी की ख़ास अंश है, उतार के वक़्त ब्रह्मांड और पिंड में कुल रचना करती चली आई है और जब यह अपने देश को उलट कर जाती है, यानी पिंड देश को छोड़ जाती है, उसी वक़्त सब रचना पिंड की सिमट जाती है। और इसी का नाम मौत है।

३३—जिस क़दर कि शक्ति और क़ुव्वतें आसमानी और ज़मीनी हैं और पाँचों तत्त्व (ज़मीन, पानी, हवा, अग्नि और आकाश) और तीनों गुन, (सतोगुन, रजोगुन और तमोगुन) और रोशनी और गरमी और खैंच शक्ति और बनाव शक्ति और मिलाव शक्ति और हटाव शक्ति और रंगामेज़ी की ताक़त वग़ैरह वग़ैरह सब सुरत यानी रूह की ताबेदार हैं, क्योंकि असल में सुरत आप उनकी पैदा करने वाली है।

३४–इसका नमूना इस दुनियाँ में हर वक्त़ और हर ज़गह वक्त़ पैदाइश नए जिस्म के आँख से नज़र आता है। देखो अफ़यून का बीज, जिसको ख़शख़ाश कहते हैं, किस क़दर छोटा है और मुआफ़िक़ और बीजों के उसपर स्थूल और सूक्ष्म खोल यानी ग़िलाफ़ चढ़े हुए हैं और उनके अन्दर मग़्ज़ और मग़्ज़ के अन्दर बैठक रूह उस बीज की है।

३५–जिस वक्त़ कि जिस्म यानी दरख़्त की पैदाइश शुरू होती है, उस वक्त़ अव्वल धार रूह के मुक़ाम से, जो कि अन्तर में उस बीज़ के मग़्ज़ में मौजूद है, पैदा होती है और वही धार कुल कार्रवाई दरख़्त के पैदा करने की करती है और जिस क़दर कि आसमानी और ज़मीनी क़ुव्वतें और ताक़तें ऊपर लिखी गई हैं, सब तावेदारी इस धार की करके दरख़्त के बनाव और बढ़ाव में मदद देती हैं जब तक कि वह पूरा होवे और फूल फल उसमें लगें।

३६–और जब सुरत यानी रूह एक जिस्म को छोड़ कर जाती है, ख़्वाह आदमी का होवे या जानवर या दरख़्त का, फ़िलफ़ौर वह जिस्म जो ख़ूबसूरत और कार्रवाई करने वाला था, बेकार होकर थोड़ी देर में गल जाता है, ख़्वाह सड़ जाता है, और तमाम अंग अंग उसके बिगड़ जाते हैं और ख़राब हो जाते हैं।

३७–इससे ज़ाहिर है कि वह ताक़तें और क़ुव्वतें और तत्त्व और गुण और रोशनी और हवा और गरमी, जो रूह की मौजूदगी में उस जिस्म यानी देह की कार्रवाई में मदद देते रहे हैं, रूह के अलहदा होने पर आपस में बिगड़ कर उस जिस्म को ख़राब और बरबाद कर देते हैं, यानी सब कार्रवाई तत्त्व और गुण और शक्ति और क़ुव्वतों की रूह के हुक्म से थी और जब वह जुदा हो गई, तब यह भी बेकार हो गए और जिस्म आनी देह, जो इनकी ताक़तों से ठहरा हुआ था, ख़राब और टुकड़े टुकड़े होकर हर एक अजज़ा उसके रफ़्ता रफ़्ता अपने अपने असल में मिल गए।

३८–जब सुरत या रूह की ऐसी ताक़त और हुकूमत हर एक पिंड

में है और यह सत्तपुरुष राधास्वामी की अंश है, फिर इसके भंडार और खज़ाने की ताक़त और हुकूमत का, जिसके घेर के थोड़े हिस्से में कुल रचना है, क्या अनुमान और क़यास किया जावे।

३९–वही भंडार कुल मालिक और कुल का हाकिम और कुल कर्त्ता और ऐन चैतन्य और आनन्द स्वरूप है और जोकि कुल रचना उसके अंशों की ताक़त से जारी है और क़ायम है, फिर वही भंडार असली सत्त है और सब पसारा उसके और उसकी अंशों के आसरे ठहरा है।

४०–असल में उस पसारे का रूप ठहराऊ नहीं है। इस वास्ते वह भंडार या उसकी अंश यानी सत्तपुरुष राधास्वामी और सुरत प्रीति करने के लायक़ है और उसमें प्रीति करने से सदा का निर्मल आनन्द मिलेगा।

४१–जो कोई पसारे के रूप में प्रीति करेगा, तो जब जब उन रूपों का नाश या अभाव होगा, तब तब दुख और क्लेश पावेगा।

४२–इस वास्ते मुनासिब है कि पसारे के रूपों में साधारण और वाजिब प्रीति वास्ते गुज़ारे के इस दुनिया में और काम लेने के इस देह से करना चाहिए और सच्ची असली प्रीति राधास्वामी के चरनों में करना लाज़िम है। और पसारों के रूपों के हासिल करने के लिए साधारण जतन करना चाहिए। और ख़ास जतन राधास्वामी के चरनों में पहुँचने के वास्ते करना ज़रूर और मुनासिब है।

४३–इसी जतन का नाम सच्चा परमार्थ है और बाक़ी सब काम सच्चे मालिक को भूल कर भर्म और धोखा है। उनमें सच्चा और पूरा परमार्थी आनन्द प्राप्त नहीं होगा, अलबत्ता शुभ कर्म का फल मिलेगा। मगर वह फल ठहराऊ नहीं होगा और उसमें आनन्द भी बहुत थोड़ा होगा और कुछ अरसे बाद जाता रहेगा और उस फल के भोगने के लिए बारम्बार देह धरनी पड़ेगी।

४४–यह जतन या तरकीब पहुँचने की राधास्वामी के देश में उसके भेदी संत सतगुरु या साधगुरू या उनके सच्चे और प्रेमी सतसंगी से मालूम हो सकती है। इस वास्ते अव्वल खोज सतगुरु या साधगुरू का ज़रूर है और जब वे मिल जावें, तो उनके चरनों में मुहब्बत करना चाहिए और उनके बचन के मुआफ़िक़ सुरत शब्द योग का अभ्यास शुरू कर देना चाहिए।

४५–संत मत सबसे ऊँचा और सब से बड़ा है। इस वास्ते इस मत के अभ्यासी को कुल मुक़ामात, जो कि सिद्धान्त हर एक मत के हैं, रास्ते में सुन्न यानी दसवें द्वार के नीचे मिलेंगे और उन सबको देखता हुआ संतों का अभ्यासी एक रोज़ निज घर में यानी राधास्वामी के चरनों में पहुँच जावेगा।

भाग ३

१–संत मत के अभ्यासी को मांस अहार और शराब और और नशों की चीज़ों को खाना या पीना नहीं चाहिए, नहीं तो उसके अभ्यास में फ़र्क़ पड़ेगा और हर्ज होगा।

२–और यह भी मुनासिब है कि संसारी लोगों से ज़रूरत के मुआफ़िक़ मेल रक्खे और ज़्यादा उनकी मुहब्बत और उनका संग न करे, नहीं तो उनके ख़्याल और चाहें उसके मन में भी अपना असर पैदा करेंगी और भजन में फ़र्क़ पड़ेगा।

३–खान पान में इस क़दर एहतियात चाहिए कि क़रीब चौथाई के या तिहाई के अपना खाना आहिस्ता आहिस्ता कम कर देवे। इसमें हलका रहेगा और नींद और सुस्ती कम आवेगी और भजन दुरुस्त बनेगा।

४–दुनियाँ की चाहें बहुत उठाना नहीं चाहिए, सिर्फ़ इस क़दर

कि जो वास्ते अपने और कुटुम्ब के गुज़ारे के मध्य के दर्जे पर ज़रूरी होवे, और फ़ज़ूल चाहें वास्ते पैदा करने और बढ़ाने धन और माल और इज़्ज़त और नामवरी के नहीं उठाना चाहिए और न उनके लिए फ़ज़ूल जतन करना मुनासिब है।

५—वक्त भजन के और ध्यान के मन और इंद्रियों को रोक कर अन्तर में शब्द और स्वरूप में लगाना चाहिए। और जो मन चंचलता करे और तरंगें काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्षा, विरोध वग़ैरह की उठावे, तो उसको थोड़ी देर नाम का सुमिरन या स्वरूप का ध्यान करके उस तरफ़ से हटाकर शब्द और स्वरूप में, जिस क़दर बने, लगाना और ठहराना चाहिए और राधास्वामी दयाल के चरनों में वास्ते सफ़ाई मन के जब तब सच्ची प्रार्थना करनी चाहिए।

६—दुनियाँ के सब कामों में कुल मालिक राधास्वामी दयाल की मौज के अनुसार बरताव चाहिए। पर हमेशा दस्तूर के मुआफ़िक़ जतन मुनासिब वास्ते हर काम के करना चाहिए और उसका फल जैसा मौज से होवे, उसको जैसे बने वैसे मंज़ूर और क़बूल करके अपने सच्चे मालिक का हमेशा शुकराना करना चाहिए। जो काम मन के मुआफ़िक़ न होवे तो समझना चाहिए कि इसी में फ़ायदा होगा और इसी सबब से ऐसी मौज हुई। पर यह बात उसी से बन आवेगी जिसके मन में सच्ची प्रतीति और सच्ची सरन राधास्वामी दयाल की है और संसार से थोड़ा बहुत वैराग्य है।

७—प्रेमी अभ्यासी को मुनासिब है कि अपने मन की चौकीदारी यानी निरख और परख करता रहे कि किस किस तरफ़ मन जाता है और क्या क्या चाहें उठाता है। और फ़ज़ूल और नामुनासिब ख़्यालों और चाहों को रोकना चाहिए और बढ़ने न देना चाहिए। और जहाँ तक बने किसी शख़्स को अपने मतलब के लिए दुख किसी क़िस्म का न पहुँचावे और जो हो सके तो आराम और सुख पहुँचावे। इसमें सच्चे मालिक की प्रसन्नता और रज़ामन्दी और प्रेम की तरक़्क़ी प्राप्त होगी।

भाग ४

१—हर कोई भजन की तरक़्क़ी के वास्ते दया चाहता है। दया की धार हर वक़्त तैयार है, पर उसकी प्राप्ति के वास्ते अधिकार चाहिए। सो इस अधिकार की प्राप्ति के लिये उसको मुनासिब है कि सब ख़्याल और चाहें छोड़ कर और परम पुरुष राधास्वामी के चरनों में बिरह और प्रेम अंग लेकर भजन में लगे। दया और प्रेम की धार वही है जो शब्द और सुरत की धार है और वह धार हर वक़्त मौजूद है, पर खोलों से ढकी हुई है और जितने कि ख़्याल और गुनावन और चाहें उठती हैं, वह किसी न किसी खोल की रचना की धार हैं। सो जब तक कि ऐसे ख़्याल और चाहें ज़बर रहेंगी, वे मन को और उसके साथ सुरत को ज़रूर अपनी तरफ़ खींचेंगी। इस सबब से मन और सुरत किसी न किसी खोल में अटक कर झुकाव उनका नीचे और बाहर की तरफ़ रहा आवेगा और अन्तर में शब्द की धार के संग नहीं मिलेंगे बल्कि उसे छूने भी नहीं पावेंगे। इस सबब से भजन का रस और आनन्द नहीं आवेगा।

२—गुनावन और ख़्याल जब हलके होंगे जब कि (१) इसके मन में संसार के भोगों की तरफ़ से थोड़ा बहुत वैराग्य होगा और (२) सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल के चरनों का सच्चा निश्चय और भाव होगा और (३) सच्ची सरन और ओट उनके चरनों की ली होगी और जो मन में (१) दूसरों का भाव धरा हुआ है और (२) सुरत शब्द मार्ग की महिमा, इस तौर पर कि सिवाय इसके दूसरी जुगत निज घर में पहुँचने की और सच्ची मोक्ष और उद्धार हासिल करने की नहीं है, मन में नहीं समाई है, तो अन्तर में भय और भाव से ख़ाली रह कर भजन में दुरुस्ती के साथ नहीं लगेगा और अपनी कसर को न पहचान कर उसके दूर करने का जतन नहीं करेगा और उलटा सतसंग में और सतगुरु में दोष लगाने को तैयार रहेगा।

३—और ऐसे सतसंगी का हाल यह है कि दुनिया और उसके

पदार्थों में ऐसी आसक्ती है कि दिल से उनको चाहता है और जो समझौती के बचन सुनाए जावें, उनके मुआफ़िक़ थोड़ा बहुत बरताव भी नहीं करता। तो फिर कैसे दया का असर प्रगट मालूम होवे ?

४—राधास्वामी बड़े दयाल हैं कि ऐसी हालत पर कभी कभी अपनी दया से ऐसे जीवों को, जो नित्य नियम से भजन करते हैं, थोड़ा बहुत रस और आनन्द देते हैं, पर जो यह ज़्यादा दर्जे की तरक़्क़ी चाहे और उसकी प्राप्ति के वास्ते जल्दी करे, तो जब तक कि थोड़ी बहुत सफ़ाई मन की नहीं करता जावेगा, जल्द तरक़्क़ी नहीं होवेगी।

५—यह भी याद रखना चाहिये कि जो कोई भजन के रस और आनन्द की प्राप्ति के वास्ते जल्दी करता है, उसको चाहिये कि सिर्फ़ मालिक के दर्शनों के निमित्त यह कारज करे और किसी क़िस्म की चाह संसारी या परमार्थी मन में न रक्खे। और सफ़ाई के लिए अपने मन को परखना चाहिये और संसारी फ़ज़ूल चाहें न उठावे और इन्द्रियों के भोगों का वाजिबी तौर पर बरताव करे, तो आहिस्ता आहिस्ता सफ़ाई होगी।

६—खुलासा यह है कि जब तक सच्चा अनुराग मालिक के चरनों का और किसी क़दर वैराग्य संसार से न होगा और भजन के वक़्त ज़रा ज़ोर देकर मन और इन्द्रियों को संसार की तरफ़ से हटा कर मालिक के चरनों में नहीं लगावेगा, तब तक जैसा रस यह चाहता है नहीं आवेगा।

७—परम पुरुष पूरन धनी राधास्वामी सर्व समर्थ हैं और जब चाहें मन को छिन में मोड़ देवें, लेकिन ज़बरदस्ती से सतसंग और भजन में लगाना मंज़ूर नहीं है। इस वास्ते जब तक यह जीव समझ बूझ कर संसार के सुखों और भोगों को तुच्छ नहीं जानेगा और उनसे किसी क़दर वैराग्य नहीं करेगा, तब तक वे इसको इस काम में जैसी मदद चाहिए नहीं दे सकते हैं।

८—सुरत शब्द योग ऐसा ज़बर असर वाला है कि जो कोई उसकी

तरफ़ सच्ची तवज्जह करे, तो कैसी ही ज़बर तरंग हो उसे फ़ौरन् हटा सकता है। पर जो यह आप ही उस तरंग का रस लेवे और उसको न छोड़े और शब्द और स्वरूप और नाम में तवज्जह न करे, तो मन और सुरत कैसे सिमट कर चढ़ें और दया की परख कैसे होवे।

भाग ५

शब्द पहला

मन रे क्यों गुमान अब करना ॥ टेक ॥
तन तो तेरा खाक मिलेगा।
चौरासी जा पड़ना ॥ १ ॥
दीन ग़रीबी चित में धरना।
काम क्रोध से बचना ॥ २ ॥
प्रीति प्रतीति गुरू की करना।
नाम रसायन घट में जरना ॥ ३ ॥
मन मलीन के कहे न चलना।
गुरु का बचन हिये बिच रखना ॥ ४ ॥
यह मतिमन्द गहे नहिं सरना।
लोभ बढ़ाय उद्र को भरना ॥ ५ ॥
तुम मानो मत इसका कहना।
इसके संग जगत बिच गिरना ॥ ६ ॥
इस मूरख को समझ पकड़ना।
गुरु के चरन कभी न बिसरना ॥ ७ ॥
गुरु का रूप नैन में धरना।
सुरत शब्द से नभ पर चढ़ना ॥ ८ ॥
राधास्वामी नाम सुमिरना।
जो वह कहें चित्त में धरना ॥ ९ ॥

शब्द दूसरा

राधास्वामी धरा नर रूप जगत में।
गुरु होय जीव चिताये ॥ १ ॥
जिन जिन माना बचन समझ के।
तिन को संग लगाये ॥ २ ॥
कर सतसंग सार रस पाया।
पी पी तृप्त अघाये ॥ ३ ॥
गुरु सँग प्रीति करी उन ऐसी।
जस चकोर चंदाये ॥ ४ ॥
गुरु बिन कल नहिं पड़त घड़ी इक।
दम दम मन अकुलाये ॥ ५ ॥
जब गुरु दर्शन मिलें भाग से।
मगन होत जस बछड़ा गाये ॥ ६ ॥
ऐसी प्रीति लगी जिन गुरुमुख।
सो सो गुरु अपनाये ॥ ७ ॥
तन की लगन भोग इन्द्री के।
छिन में सब बिसराये ॥ ८ ॥
गुरु की मूरत बसी हिये में।
आठ पहर गुरु संग रहाये ॥ ९ ॥
अस गुरुभक्ति करी जिन पूरी।
ते ते नाम समाये ॥ १० ॥
स्वाँति बूँद जस रटत पपीहा।
अस धुन नाम लगाये ॥ ११ ॥
नाम प्रताप सुरत अब जागी।
तब घट शब्द सुनाये ॥ १२ ॥
शब्द पाय गुरु शब्द समानी।
सुन्न शब्द सत शब्द मिलाये ॥ १३ ॥

अलख शब्द और अगम शब्द ले।
निज पद राधास्वामी आये ॥ १४ ॥
पूरा घर पूरी गति पाई।
अब कुछ आगे कहा न जाये ॥ १५ ॥

शब्द तीसरा

सतगुरु सरन गहो मेरे प्यारे।
कर्म जगात चुकाय ॥ १ ॥
भूल भरम में सब जग पचता।
अचरज बात न काहू सुहाय ॥ २ ॥
भाग हीन सब जग माया बस।
यह निर्मल गति कोइ न पाय ॥ ३ ॥
जिन पर दया आदि करता की।
सो यह अमृत पीवन चाहि ॥ ४ ॥
कहाँ लग महिमा कहूँ इस गति की।
बिरले गुरुमुख चीन्हत ताहि ॥ ५ ॥
बिन गुरु चरन और नहिं भावे।
इस आनँद में रहे समाय ॥ ६ ॥
दर्शन करत पिंड सुधि भूली।
फिर घर बाहर सुधि क्या आय ॥ ७ ॥
ऐसी सुरत प्रेम रँग भीनी।
तिनकी गति क्या कहूँ सुनाय ॥ ८ ॥
जोग बैराग ज्ञान सब रूखे।
यह रस उनमें दीखे न ताय ॥ ९ ॥
बड़भागी कोइ बिरला प्रेमी।
तिन यह न्यामत मिली अधिकाय ॥ १० ॥
राधास्वामी कहत सुनाई।
यह आरत कोइ गुरुमुख गाय ॥ ११ ॥

शब्द चौथा

प्रेमी सुनो प्रेम की बात ॥ टेक ॥
सेवा करो प्रेम से गुरु की।
और दर्शन पर बल बल जात ॥ १ ॥
बचन पियारे गुरु के ऐसे।
जस माता सुत तोतरि बात ॥ २ ॥
जस कामी को कामिन प्यारी।
अस गुरुमुख को गुरु का गात ॥ ३ ॥
खाते पीते चलते फिरते।
सोवत जागत बिसर न जात ॥ ४ ॥
खटकत रहे भाल ज्यों हियरे।
दर्दी को ज्यों दर्द समात ॥ ५ ॥
ऐसी लगन गुरू सँग जाकी।
वह गुरुमुख परमारथ पात ॥ ६ ॥
जब लग गुरु प्यारे नहिं ऐसे।
तब लग हिरसी जानो जात ॥ ७ ॥
मनमुख फिरे किसी का नाहीं।
कहो क्योंकर परमारथ पात ॥ ८ ॥
राधास्वामी कहत सुनाई।
अब सतगुरु का पकड़ो हाथ ॥ ९ ॥

शब्द पाँचवाँ

गुरु चरन पकड़ दृढ़ भाई।
गुरु का सँग करो बनाई ॥ १ ॥
गुरु बचन करो आधारा।
गुरु दरस निहारो सारा ॥ २ ॥
गुरु की गति अगम अपारा।
गुरु अस्तुति करो सँवारा ॥ ३ ॥

गुरु राखो हिरदे माहीं।
तो मिटे काल परछाहीं ॥ ४ ॥
भोगों की आसा त्यागो।
मनसा तज जग से भागो ॥ ५ ॥
आसा गुरु शब्द लगाओ।
मनसा गुरु पद में लाओ ॥ ६ ॥
आसा और मनसा मोड़ी।
मन इन्द्री गुरु में जोड़ी ॥ ७ ॥
दिन रात रहे गुरु ध्याना।
गुरु बिन कोइ और न जाना ॥ ८ ॥
गुरु स्वाँस गिरास न बिसरे।
तू पल पल गा गुरु जस रे ॥ ९ ॥
गुरु हैं हितकारी तेरे।
गुरु बिन कोइ मित्र न है रे ॥ १० ॥
गुरु फन्द छुड़ावें जम के।
गुरु मर्म लखावें सम के ॥ ११ ॥
भौजल से पार उतारें।
छिन छिन में तुझे सँवारें ॥ १२ ॥
ज्यों निज अंडा सेवे कच्छा।
त्यों गुरु राखें तेरी पच्छा ॥ १३ ॥
गुरु सम कोइ और न रक्षक।
कुल कुटुम्ब सब जानो तक्षक ॥ १४ ॥
ता ते गुरु को कभी न छोड़ो।
कनक कामिनी से मन मोड़ो ॥ १५ ॥
गुरु की भक्ति सदा सुखदाई।
गुरु बिन मन बुधि भी दुखदाई ॥ १६ ॥
गुरु बिश्वास चित्त में धरो।
गुरु परशाद जक्त से तरो ॥ १७ ॥

मान मोह मद गुरु सब हरें।
काम क्रोध भी तुझ से डरें ॥ १८ ॥
लोभ लहर सब देयँ निकारी।
माया ममता बाज़ी हारी ॥ १९ ॥
तुझ से जीत सके नहिं कोई।
गुरु का बल जो मन में होई ॥ २० ॥
गुरु से पावे नाम रसायन।
घट से भागे तृष्णा डायन ॥ २१ ॥
गुरु चरनामृत गुरु परशादी।
प्रीति सहित ले मिटे उपाधी ॥ २२ ॥
गुरु पर तन मन दोनों वारो।
हिरदे में गुरु रूप निहारो ॥ २३ ॥
गुरु हैं दाता गुरु हैं दानी।
गुरु आराधो छिन छिन प्रानी ॥ २४ ॥
सत्तपुरुष सतनाम गुरू हैं।
अलख रूप और अगम गुरू हैं ॥ २५ ॥
राधास्वामी गुरु का नाम।
निज पद पाय करो बिसराम ॥ २६ ॥
गुरु सब बिधि हैं अन्तरजामी।
गावो ध्यावो राधास्वामी ॥ २७ ॥

शब्द छठवाँ

सतगुरु का नाम पुकारो।
सतगुरु को हियरे धारो ॥ १ ॥
सतगुरु का करो भरोसा।
फिर करो न कुछ अफ़सोसा ॥ २ ॥
सतगुरु तोहि छिन छिन पोसें।
हँगता तेरी सब बिधि खोसें ॥ ३ ॥

तू कर उन चरनन होशें।
सतगुरु से मत कर रोसें॥ ४॥
सतगुरु गति अब सुन मो से।
कही जात न रंचक मुँह से॥ ५॥
दसवें में खैंचे नौ से।
फिर एक करें तोहि दो से॥ ६॥
शब्दा रस तोहि पिलावें।
जमपुर से फेर बचावें॥ ७॥
घर अगम तोहि दरसावें।
मारग सब तोहि लखावें॥ ८॥
जो संगत उनकी करते।
सो जग से कभी न डरते॥ ९॥
जो बेमुख गुरु से फिरते।
सो भौसागर में गिरते॥ १०॥
चौरासी चक्कर खावें।
फिर जन्म जन्म दुख पावें॥ ११॥
तुम सोचो अपने मन में।
कोई नाहिं गुरू सम जग में॥ १२॥
जिन जिन गुरु भक्ती धारी।
सो पहुँचे निज दरबारी॥ १३॥
गुरु भक्ति न जिनको प्यारी।
तिन जीती बाज़ी हारी॥ १४॥
गुरु चरनन आशिक़ होना।
यह बात बड़ी क्या कहना॥ १५॥
गुरु लगें जिसे अति प्यारे।
तिन कुल कुटुम्ब सब तारे॥ १६॥
धन पिता मात उन जन के।
जिन भक्ति करी कुल तज के॥ १७॥

जिन सही मलामत जग की।
तिन मिली रास सुख घर की ॥ १८ ॥
जो कुल लाज जक्त से डरे।
गुरु भक्ती से वह पुनि गिरे ॥ १९ ॥
सूरा रण से कभी न टरे।
सती सदा मुरदे सँग जरे ॥ २० ॥
रण छोड़े कायर कहलाय।
सती फिरे भंगी घर जाय ॥ २१ ॥
पपिहा अपना पन नहिं त्यागे।
जले पतंगा जोती आगे ॥ २२ ॥
मछली को जैसे जल धारा।
गुरुमुख को सतगुरु अस प्यारा ॥ २३ ॥
जिन पर बख़्शिश गुरु की होई।
गुरुमुख ऐसा बिरला कोई ॥ २४ ॥
राधास्वामी कही बनाय।
सेवक को गुरु दिया जगाय ॥ २५ ॥

शब्द सातवाँ

सतगुरु कहें करो तुम सोई।
मन के कहे चलो मत कोई ॥ १ ॥
यह भौ में गोते दिलवावे।
सतगुरु से बेमुख करवावे ॥ २ ॥
कालचक्र में डाल घुमावे।
मोह जाल में बहुत फँसावे ॥ ३ ॥
मित्र न जानो बैरी पूरा।
गुरु भक्ती से डारे दूरा ॥ ४ ॥
दारा सुत सम्पति परिवारा।
डारे काम क्रोध की धारा ॥ ५ ॥

इन्द्री भोग बास भरमावे ।
भक्ति बिबेक नाश करवावे ॥ ६ ॥
सतगुरु प्रीतम मिलें न जब तक ।
कभी न छूटें मन के कौतुक ॥ ७ ॥
छल बल मन के कहाँ लग बरनूँ ।
ऋषी मुनी कोई जाने न मरमूँ ॥ ८ ॥
ताते सतगुरु खोजो निज के ।
बिन सतगुरु कोई चले न बच के ॥ ९ ॥
सतगुरु सम प्रीतम नहिं कोई ।
मन मलीन को धोवें वोही ॥ १० ॥
मेरा भाग उदय हुआ भारी ।
सतगुरु की मैं हुई अति प्यारी ॥ ११ ॥
जक्त जीव कहा जाने महिमा ।
वेद कतेब न जाने मरमा ॥ १२ ॥
ज्ञानी जोगी सब थक हारे ।
सतगुरु महिमा कोइ न विचारे ॥ १३ ॥
ता ते सतगुरु सरन पुकारूँ ।
आरत उनकी नित प्रति धारूँ ॥ १४ ॥
आरत करूँ प्रेम से जबही ।
कुल परिवार तरे मेरा तबही ॥ १५ ॥
आरत विधि अब करूँ सिंगारा ।
राधास्वामी मेरे हुए दयारा ॥ १६ ॥
राधास्वामी परम दयाल ।
कर आरत उन हुआ निहाल ॥ १७ ॥

शब्द आठवाँ

गुरू की मौज रहो तुम धार ।
गुरू की रज़ा सम्हालो यार ॥ १ ॥

गुरू जो करें सो हित कर जान।
गुरू जो कहें सो चित धर मान॥ २॥
शुकर की करना समझ बिचार।
सुक्ख दुख देंगे हिकमत धार॥ ३॥
ताड़ और मार करें सोई प्यार।
भोग सब इन्द्री रोग निहार॥ ४॥
कहूँ क्या दम दम शुकर गुज़ार।
बिना उन और न करने हार॥ ५॥
दुखी चित से न हो दुख लार।
सुखी होना नहीं सुख जार॥ ६॥
बिसारो मत उन्हें हर बार।
दुक्ख और सुक्ख रहो उन धार॥ ७॥
गुरू और शब्द ये दोऊ मीत।
नहीं कोई और इन धर चीत॥ ८॥
यही सतपुरुष यही करतार।
लगावें तोहि एक दिन पार॥ ९॥
बिना उन कोई नहीं संसार।
देव मन सूरत उन पर वार॥ १०॥
करें वह नित्त तेरी सार।
तेरे तन मन के हैं रखवार॥ ११॥
शुकर कर राख हिरदे धार।
मिटावें दुक्ख सबही झाड़॥ १२॥
करें क्या मन तेरा नाकार।
नहीं तू छोड़ता विष धार॥ १३॥
भोग में गिरे बारम्बार।
न माने कहन उनकी सार॥ १४॥
इसी से मिले तुझको दंड।
नहीं तू मानता मतिमन्द॥ १५॥

सहो अब पड़े जैसी आय।
करो फ़र्याद गुरु से जाय॥ १६॥
पकड़ फिर उन्हीं को तू धाय।
करेंगे वो ही तेरी सहाय॥ १७॥
बिना उन और नहीं दरबार।
रहो उन चरन में हुशियार॥ १८॥
गुनह तुम किये दिन और रात।
गुरू की कुछ न मानी बात॥ १९॥
इसी से भोगते दुख घात।
बचावेंगे वही फिर तात॥ २०॥
रहो राधास्वामी के तुम साथ।
लगे फिर शब्द अगम तुम हाथ॥ २१॥

शब्द नवाँ

नाम दान अब सतगुरु दीजे।
काल सतावे स्वाँसा छीजे॥ १॥
दुख पावत मैं निस दिन भारी।
गही आय अब ओट तुम्हारी॥ २॥
तुम समान कोइ और न दाता।
मैं बालक तुम पित और माता॥ ३॥
मो को दुखी आप कस देखो।
यह अचरज मोहिं होत परेखो॥ ४॥
मैं हूँ पापी अधम विकारी।
भूला चूका छिन छिन भारी॥ ५॥
औगुन अपने कहाँ लग बरनूँ।
मेरी बुधि समझे नहिं मरमूँ॥ ६॥
तुम्हरी गति मति नेक न जानूँ।
अपनी मति अनुसार बखानूँ॥ ७॥

तुम समरथ और अंतरजामी ।
क्या क्या कहूँ मैं सतगुरु स्वामी ॥ ८ ॥
मौज करो दुख अंतर हरो ।
दया दृष्टि अब मो पै धरो ॥ ९ ॥
माँगूँ नाम न माँगूँ मान ।
जस जानो तस देव मोहि दान ॥ १० ॥
मैं अति दीन भिखारी भूखा ।
प्रेम भाव नहिं सब बिधि रूखा ॥ ११ ॥
कैसे दोगे नाम अमोला ।
मैं अपने को बहु बिधि तोला ॥ १२ ॥
होय निरास सबर कर बैठा ।
पर मन धीरज धरे न नेका ॥ १३ ॥
शायद कभी मेहर हो जावे ।
तो कहुँ नाम नोक मिल जावे ॥ १४ ॥
बिना मेहर कोइ जतन न सूझे ।
बरि्दशश होय तभी कुछ बूझे ॥ १५ ॥
किनका नाम करे मेरा काज ।
हे सतगुरु मेरी तुमको लाज ॥ १६ ॥
अब तो मन कर चुका पुकार ।
राधास्वामी करो उधार ॥ १७ ॥

शब्द दसवाँ

नाम रस पीवो गुरु की दात ।
शब्द सँग भींजो मन कर हाथ ॥ १ ॥
चरन गुरु पकड़ो तन मन साथ ।
मान मद मारो आवे शान्त ॥ २ ॥
परख कर समझो गुरु की बात ।
निरख कर चलियो माया घात ॥ ३ ॥

जक्त सब डूबा भौजल जात ।
नाम बिन छुटे न जम का नात ॥ ४ ॥
घाट घट उलटो दिन और रात ।
मोह की बाज़ी होगी मात ॥ ५ ॥
सुरत से करो शब्द बिख्यात ।
गगन चढ़ देखो जा साक्षात ॥ ६ ॥
मिटे फिर मन की सब उतपात ।
राधास्वामी परखी और परखात ॥ ७ ॥

शब्द ग्यारहवाँ

गुरू मोहि अपना रूप दिखाओ ॥ टेक ॥
यह तो रूप धरा तुम सरगुन ।
जीव उबार कराओ ॥ १ ॥
रूप तुम्हारा अगम अपारा ।
सोई अब दरसाओ ॥ २ ॥
देखूँ रूप मगन होय बैठूँ ।
अभय दान दिलवाओ ॥ ३ ॥
यह भी रूप पियारा मो को ।
इस ही से उसको समझाओ ॥ ४ ॥
बिन इस रूप काज नहिं होई ।
क्योंकर वाहि लखाओ ॥ ५ ॥
ता ते महिमा भारी इसकी ।
पर वह भी लखवाओ ॥ ६ ॥
वह तो रूप सदा तुम धारो ।
या ते जीव जगाओ ॥ ७ ॥
यह भी भेद सुना मैं तुम से ।
सुरत शब्द मारग नित गाओ ॥ ८ ॥

शब्द रूप जो रूप तुम्हारा ।
वा में भी अब सुरत पठाओ ॥ ९ ॥
डरता रहूँ मौत और दुख से ।
निर्भय कर अब मोहिं छुड़ाओ ॥ १० ॥
दीनदयाल जीव हितकारी ।
राधास्वामी काज बनाओ ॥ ११ ॥

शब्द बारहवाँ

देख पियारे मैं समझाऊँ ।
रूप हमारा न्यारा ॥ १ ॥
वह तो रूप लखे नहिं कोई ।
जब लग देउँ न सहारा ॥ २ ॥
करनी करो मार मन डालो ।
इन्द्री रोक दुआरा ॥ ३ ॥
सुरत चढ़ाय गगन पर धाओ ।
सुन्न शिखर के पारा ॥ ४ ॥
सत्तपुरुष का रूप दिखाऊँ ।
अलख अगम दरसारा ॥ ५ ॥
ताके आगे राधास्वामी ।
वह निज रूप हमारा ॥ ६ ॥
धीरज धरो करो सतसंगत ।
मेहर दया से लेउँ सुधारा ॥ ७ ॥
वह तो रूप दिखाकर छोड़ूँ ।
तुम जल्दी क्यों करो पुकारा ॥ ८ ॥
तुम्हरी चिन्ता मैं मन धारी ।
तुम अचिन्त रह धरो पियारा ॥ ९ ॥
संशय छोड़ करो दृढ़ प्रीती ।
और परतीत सँवारा ॥ १० ॥

यह करनी मैं आप कराऊँ।
और पहुँचाऊँ धुर दरबारा ॥ ११ ॥
राधास्वामी कहत सुनाई।
जब जब जैसी मौज बिचारा ॥ १२ ॥

भाग ६

१–मन को और गुरू को सन्मुख खड़ा करे। उस वक़्त जो गुरू का हुक्म माना तो मन को मारा और जो मन के कहने में चला तो गुरू से बेमुख हुआ। सो जिसको दर्द है वह तो गुरू को ही मुख्य रक्खेगा, और जिसको ख़ौफ़ नहीं है वह मन की लहरों में बहेगा।

२–राधास्वामी दयाल को दीनता पसंद है। जो दीनता सच्ची है तो न मन की चंचलता का फ़िक्र करे और न रास्ते के तोशे का सोच करे। एक राधास्वामी दयाल की सरन दृढ़ करे और उनकी ओट लेवे, बेड़ा पार है।

३–नाम यानी शब्द बड़ा पदार्थ है—पर किसी को इसकी क़दर नहीं है—क्योंकि नाम की यह महिमा है कि सोते पुरुष को जगाओ यानी पुकारो तो वह जाग पड़ता है और जो जागता पुरुष है, उसको नाम लेकर पुकारो तो क्यों नहीं सुनेगा। पर वह तुम्हारी पकाई और सचाई देखता है और जब तुम्हारी आँखों को देखने के लायक़ और हृदय को अपने बैठने के लायक़ करले, तब प्रगट होवे। इतने में जो घबरा जावे और छोड़ देवे, तो वह भी चुप हो रहता है और जिसने यह समझ लिया कि जब तक स्वाँस आता जाता है तब तक नाम को नहीं छोड़ूँगा, उसको फिर वह ज़रूर मिलता है।

४–मुरीद नाम मुर्दे का है। जिस तरह गुरू कहें उसी तरह करे, अपनी अक़्ल को पेश न करे। सो जब तक यह हालत न आवे तब

तक अपने को ज़िन्दा और संसारी जाने और मुर्दा, मृतक और पूरा सेवक न माने पर मेहनत करे जाय और बचन माने, यानी सतगुरु की सेवा और सतसंग और भजन करता रहे और उनके चरनों में प्रीति और प्रतीति बढ़ाता रहे। एक दिन मुरीद हो जावेगा।

५—जैसे संसार के पदार्थों का यह जीव मुहताज है, ऐसे ही परमार्थ का मुहताज नहीं है और जैसे संसारी पदार्थों के वास्ते दीन होता है, ऐसा नाम के वास्ते दीन भी नहीं होता है और जो कभी दीन भी होता है, तो कपट के साथ। पर सतगुरु राधास्वामी अंतरजामी हैं, वह इस तरह कब नाम की बख़्शिश करते हैं। और सबब सच्ची दीनता न आने का यह है कि यह जीव बेग़रज़ है। सच यह है कि जब तक यह जीव सतगुरु के सामने सच्चा दीन न होगा, तब तक जो मालिक भी उसको तारना चाहे तो नहीं तार सकता है।

६—दोस्त और दुश्मन दोनों में मालिक आप बैठा है। फिर दोस्त की दोस्ती पर और दुश्मन की दुश्मनी पर ख़्याल नहीं करना चाहिए—दोनों में मालिक प्रेरक है। पर यह दृष्टि सबकी नहीं हो सकती है। जो अपने में मालिक का दर्शन करते हैं, उनकी ऐसी दृष्टि है। और जो कि सतसंग और अभ्यास करते हैं उनको भी ऐसी आदत करना चाहिए कि जिससे विरोध चित्त में न आने पावे। सो यह बात जल्दी हासिल नहीं होगी। जब हर रोज़ सतसंग और अंतरमुख अभ्यास किया जावेगा, तब कोई काल में हासिल होगी।

७—साध वही है जिसने सब आसरे छोड़ कर एक सतगुरु का आसरा साध लिया है और सब संतों का मूल मत जो शब्द है, उसको दृढ़ कर पकड़ा है और जिस काम में कि गुरु और शब्द भक्ति में कसर पड़े उसको नहीं करता है। इस वास्ते वही गुरु भक्त है और वही साध है।

८—जिसको शौक़ परमार्थ और ख़ौफ़ चौरासी का है, वही राधास्वामी से प्रीति करेंगे और प्रतीति भी राधास्वामी की उन्हीं को

आवेगी। और जो परचा चाहते हैं और बिना परचे प्रतीति नहीं करते, वह परमार्थी नहीं हैं, उनको सतगुरु पर भाव नहीं आवेगा। और परचा देकर प्रतीति कराने की मौज नहीं है, क्योंकि परचे की प्रतीति का भरोसा नहीं है। प्रतीति उन्हीं की सच्ची है जिनको सतगुरु के दर्शन और बचन प्यारे लगते हैं और बिना उनके दिल को चैन नहीं आता। ऐसे जो जीव हैं वह परचा भी देखते हैं और जो निरे परचे और करामात के गाहक हैं, उनको परचा दिखाने की मौज नहीं है।

९—राधास्वामी दयाल की सरन का दर्जा बहुत ऊँचा है और वैसे तो हर कोई कहता है कि हमने सरन ले ली। पूरे सरन वालों की यह हालत है कि उनको सिवाय सतगुरु और राधास्वामी दयाल के और दूसरा कोई प्यारा नहीं लगता है। जिसकी यह हालत है उसका कहना सब दुरुस्त है। पहले जो संत हुए, उन्होंने, जब तक जीव ने तन मन धन नहीं भेट किया, उद्धार नहीं किया। पर अब राधास्वामी दयाल जीवों को दुखी और बलहीन देखकर थोड़ी दीनता और प्रीति पर उद्धार अपनी तरफ़ से दया करके फ़रमाते हैं। इस वास्ते जिनको सतगुरु के दर्शन और सेवा और सतसंग और सुरत शब्द का अभ्यास प्राप्त है, वही जीव बड़भागी हैं।

१०—गुरुमुख उसका नाम है जो राधास्वामी दयाल को मालिक कुल्ल समझे और उनकी किसी करतूत पर तर्क न करे और अभाव न लावे। मसलन् किसी के घर में मौत हो गई या कोई दुख आकर पड़ा या नुक़सान हो गया या गर्मी ज़्यादा हुई या सर्दी ज़्यादा हुई या बारिश ज़्यादा हुई या बिलकुल न हुई या बीमारी या मरी या और कोई आफ़तें और मुश्किल पड़ी, तो उस वक़्त ऐसा न कहे कि ऐसा मुनासिब न था, यह बेजा या बुरा हुआ, बल्कि यह समझना चाहिए कि जो हुआ सो मौज से हुआ और ऐसा ही मुनासिब होगा और इसी में मसलहत होगी। सो यह बात किसी पूरे गुरुमुख से बन आवेगी, और किसी की ताक़त नहीं है। और जो सतसंगी हैं उनको

भी चाहिए कि जिस क़दर हो सके इसी मुआफ़िक़ अपनी समझौती और बरताव दुरुस्त करते जावें।

११—जब तकलीफ़ होवे तब हुज़ूर राधास्वामी दयाल को याद करे, वे फ़ौरन् सेवक के पास निज रूप से मौजूद हैं। काल और कर्म उस रूप के पास नहीं आ सकते हैं, दूर ही दूर से डराते हैं और आप भी डरते हैं। फिर सतगुरु राधास्वामी दयाल की गोद में किसी तरह का डर नहीं है, वे हर वक्त रक्षक हैं। मौज और मसलहत उनकी सेवक नहीं जान सकता है, पर वे खूब जानते हैं और जो मौज होवे, तो सेवक को भी जना देवें। शब्द रूप, सुरत रूप, प्रेम रूप, आनन्द रूप, हर्ष रूप और फिर अरूप हैं।

भाग ७

कबीर साहब के दोहे

गुरुदेव

जो गुरु बसें बनारसी, शिष्य समुंदर तीर।
एक पलक बिसरें नहीं, जो गुन होय शरीर॥ १॥
पहले दाता सिष भया, तन मन अरपा सीस।
पीछे दाता गुरु भये, जिन नाम किया बख़्सीस॥ २॥
कोटिन चंदा ऊगवें, सूरज कोट हज़ार।
सतगुरु मिलिया बाहरा, दीसे घोर अँधार॥ ३॥
गुरु को सिर पर राखिये, चलिये आज्ञा माहिं।
कहें कबीर ता दास को, तीन लोक डर नाहिं॥ ४॥

सेवक

सेवक सेवा में रहे, सेवक कहिये सोय।
कहें कबीर सेवा बिना, सेवक कभी न होय॥ १॥

सेवक सेवा में रहे, अंत कहूँ मति जाय।
दुख सुख सिर ऊपर सहे, कहें कबीर समझाय ॥ २ ॥
सेवक स्वामी एक मत, जो मत में मत मिल जाय।
चतुराई रीझें नहीं, रीझें मन के भाय ॥ ३ ॥
फल कारन सेवा करे, तजे न मन से काम।
कहें कबीर सेवक नहीं, चहै चौगुना दाम ॥ ४ ॥

भक्ति

कबीर गुरु की भक्ति कर, तज बिषया रस चौज।
बार बार नहिं पाइहै, मानुप जन्म की मौज ॥ १ ॥
भक्ति भाव भादों नदी, सभी चलीं घहराय।
सरिता सोई सराहिये, जो जेठ मास ठहराय ॥ २ ॥
गुरु भक्ती अति कठिन है, ज्यों खाँड़े की धार।
बिना साँच पहुँचे नहीं, महा कठिन ब्योहार ॥ ३ ॥
भक्ति दुहेली गुरू की, नहिं कायर का काम।
सीस उतारे हाथ सों, सो लेसी सतनाम ॥ ४ ॥
जब लग भक्ति सकाम है, तब लग निस्फल सेव।
कहें कबीर वे क्यों मिलें, निहकामी निज देव ॥ ५ ॥
कबीर गुरु की भक्ति का, मन में बहुत हुलास।
मन मनसा माँजे नहीं, होन कहत हैं दास ॥ ६ ॥
हरख बड़ाई देख कर, भक्ति करे संसार।
जब देखे कुछ हीनता, औगुन धरे गँवार ॥ ७ ॥
जहाँ भक्ति तहँ भेप नहिं, वर्णाश्रम तहँ नाहिं।
नाम-भक्ति जो प्रेम सों, सो दुर्लभ जग माहिं ॥ ८ ॥
भक्ति पदारथ तब मिले, जब गुरु होंय सहाय।
प्रेम प्रीत की भक्ति जो, पूरन भाग मिलाय ॥ ९ ॥

प्रेम

प्रेम पियाला जो पिये, सीस दच्छिना देय।
लोभी सीस न दे सके, नाम प्रेम का लेय ॥ १ ॥

जा घट प्रेम न संचरै, सो घट जान मसान।
जैसे खाल लुहार की, साँस लेत बिन प्रान॥ २॥
जहाँ प्रेम तहँ नेम नहिं, तहाँ न बुधि व्योहार।
प्रेम मगन जब मन भया, कौन गिने तिथि बार॥ ३॥
जोगी जंगम सेवड़ा, सन्यासी दरवेश।
बिना प्रेम पहुँचे नहीं, दुरलभ सतगुरु देश॥ ४॥
पीया चाहे प्रेम रस, राखा चाहे मान।
एक म्यान में दो खड़ग, देखा सुना न कान॥ ५॥
पिय-रस पिया सो जानिये, उतरे नहीं खुमार।
नाम अमल माता रहे, पिये अमी रस सार॥ ६॥
जैसी लौ पहले लगी, तैसी निबहै ओर।
अपनी देह की को गिनै, तारे पुरुष करोर॥ ७॥
लागी लागी क्या करे, लागी नाहीं एक।
लागी सोई जानिये, जो करे कलेजे छेक॥ ८॥

पतिव्रता

पतिबरता मैली भली, काली कुचिल कुरूप।
पतिबरता के रूप पर, वारौं कोटि सरूप॥ १॥
मैं सेवक समरत्थ का, कबहुँ न होय अकाज।
पतिबरता नाँगी रहे, तो वाहि पती को लाज॥ २॥
इक चित होय न पिया मिलें, पतिव्रत ना आवे।
चंचल मन चहुँ दिस फिरे, पिया कहो कैसे पावे॥ ३॥
एक नाम को जान कर, दूजा देय बहाय।
तीरथ व्रत जप तप नहीं, सतगुरु चरन समाय॥ ४॥

सूरमा

खेत न छाँड़े सूरमा, जूझे दो दल माहिं।
आसा जीवन मरन की, मन में राखे नाहिं॥ १॥
अब तो जूझे ही बनें, मुड़ चाले घर दूर।
सिर साहब को सोंपते, सोच न कीजै सूर॥ २॥

आब आँच सहना सुगम, सुगम खड्ग की धार।
नेह निबाहन एक रस, महा कठिन ब्योहार॥ ३॥
नेह निबाहे ही बने, सोचे बनें न आन।
तन दे मन दे सीस दे, नेह न दीजे जान॥ ४॥
सूरा नाम धराय कर, अब क्या डरपे बीर।
मँड रहना मैदान में, सन्मुख सहना तीर॥ ५॥
तीर तुपक से जो लड़ै, सो तो सूर न होय।
माया तज भक्ती करे, सूर कहावे सोय॥ ६॥

मृतक

जीवत मिरतक हो रहे, तजे खलक की आस।
रक्षक समरथ सतगुरू, मति दुख पावे दास॥ १॥
मन को मिरतक देख के, मति मानें बिश्वास।
साध जहाँ लौं भय करें, जब लग पिंजर स्वाँस॥ २॥

बिरह

बिरहा आया दरस को, कड़ुआ लागा काम।
काया लागी काल होय, मीठा लागा नाम॥ १॥
हँस हँस कंत न पाइया, जिन पाया तिन रोय।
हाँसी खेले पिव मिलैं, तो कौन दुहागिन होय॥ २॥
जो जन बिरही नाम के, तिनकी गति है येह।
देही से उद्यम करें, सुमिरन करें बिदेह॥ ३॥
सो दिन कैसा होयगा, गुरू गहेंगे बाँह।
अपना करि बैठावहीं, चरन कँवल की छाँह॥ ४॥

परिचय

हम बासी उस देस के, जहँ बारहमास बिलास।
प्रेम झिरे बिगसे कँवल, तेज पुंज परकास॥ १॥
संशय करूँ न मैं डरूँ, सब दुख दिये निवार।
सहज सुन्न में घर किया, पाया नाम अधार॥ २॥

पूरे सों परचा भया, दुख सुख मेला दूर।
जम सों बाकी कट गई, साईं मिला हज़ूर ॥ ३ ॥
राता माता नाम का, पीया प्रेम अघाय।
मतवाला दीदार का, माँगे मुक्ति बलाय ॥ ४ ॥

साध

कबीर संगत साध की, जौ की भूसी खाय।
खीर खाँड़ भोजन मिले, साकित संग न जाय ॥ १ ॥
कबीर संगत साध की, ज्यों गंधी का बास।
जो कुछ गंधी दे नहीं, तो भी बास सुबास ॥ २ ॥
रिद्ध सिद्ध माँगूँ नहीं, माँगूँ तुम पै येह।
निस दिन दर्शन साध का, कहें कबीर मोहि देह ॥ ३ ॥
निरबैरी निहकामता, स्वामी सेती नेह।
बिषया सों न्यारा रहे, साधन का मत येह ॥ ४ ॥
साध नदी जल प्रेम रस, तहाँ प्रछालूँ अंग।
कहें कबीर निरमल भया, साधू जन के संग ॥ ५ ॥
कबीर दर्शन साध के, साहब आवें याद।
लेखे में सोई घड़ी, बाकी के दिन बाद ॥ ६ ॥
नहिं सीतल है चन्द्रमा, हिम नहिं सीतल होय।
कबीर सीतल संत जन, नाम सनेही सोय ॥ ७ ॥

शब्द

शब्द गुरू को कीजिये, बहुतक गुरू लबार।
अपने अपने लोभ को, ठौर ठौर बटमार ॥ १ ॥
शब्द बिना स्रुत आँधरी, कहो कहाँ को जाय।
द्वार न पावे शब्द का, फिर फिर भटका खाय ॥ २ ॥
यही बड़ाई शब्द की, जैसे चुम्बक भाय।
बिना शब्द नहिं ऊबरे, जो केता करे उपाय ॥ ३ ॥
सही टेक है तास की, जाके सतगुरु टेक।
टेक निबाहे देह भर, रहे शब्द मिल एक ॥ ४ ॥

सुमिरन

सुमिरन से सुख होत है, सुमिरन से दुख जाय।
कहें कबीर सुमिरन किये, साँईं माहिं समाय ॥ १ ॥
राजा राना राव रंक, बड़ा जो सुमिरे नाम।
कहें कबीर बड़ों बड़ा, जो सुमिरे निःकाम ॥ २ ॥
बाहर क्या दिखलाइये, अंतर जपिये नाम।
कहा महोला खलक़ सों, पड़ा धनी सों काम ॥ ३ ॥
सहजे ही धुन होत है, हरदम घट के माहिं।
सुरत शब्द मेला भया, मुख की हाजत नाहिं ॥ ४ ॥

करनी

करनी बिन कथनी कथे, गुरु पद लहे न सोय।
बातों के पकवान से, धापा नाहीं कोय ॥ १ ।
कथनी थोथी जक्त में, करनी उत्तम सार।
कहें कबीर करनी सबल, उतरे भौजल पार ॥ २ ॥
करनी करनी सब कहें, करनी माहिं बिबेक।
वह करनी बहि जान दे, जो नहिं परसे एक ॥ ३ ॥

वैराग्य

टोटे में भक्ती करे, ताका नाम सपूत।
मायाधारी मस्खरे, केते ही गये ऊत ॥ १ ॥
स्वारथ का सब कोइ सगा, सारा ही जग जान।
बिन स्वारथ आदर करे, सोई संत सुजान ॥ २ ॥
जान बूझ जड़ हो रहे, बल तज निरबल होय।
कहें कबीर ता दास को, गंज न सक्के कोय ॥ ३ ॥

चेतावनी

पानी केरा बुलबुला, इस मानुप की ज़ात।
देखत ही छिप जायँगे, ज्यों तारा परभात ॥ १ ॥

कै खाना कै सोवना, और न कोई चीत।
सतगुरु शब्द बिसारिया, आदि अन्त का मीत॥ २॥
यह दुनिया दो रोज़ की, मत कर या से हेत।
गुरु चरनन से लागिये, जो पूरन सुख देत॥ ३॥

विभचारिन

मुख से नाम रटा करे, निस दिन साधू संग।
कहो धौं कौन कुफेर से, नाहिन लागत रंग॥ १॥
मन दिया कहिं और ही, तन साधों के संग।
कहें कबीर कोरी गजी, कैसे लागे रंग॥ २॥

असाध

देखा देखी भक्ति को, कबहुँ न चढ़सी रंग।
बिपत पड़े पर छाँड़सी, ज्यों कंचुरी भुजंग॥ १॥
तन को जोगी सब करें, मन को करै न कोय।
सहजे सब सिधि पाइये, जो मन जोगी होय॥ २॥

मन

कबीर मन तो एक है, भावें तहाँ लगाय।
भावें गुरु की भक्ति कर, भावें विषय कमाय॥ १॥
मन–मुरीद संसार है, गुरु–मुरीद कोई साध।
जो माने गुरु बचन को, ताका मता अगाध॥ २॥
मन ही को परबोधिये, मन ही को उपदेश।
जो यह मन बस आवई, शिष्य होय सब देश॥ ३॥
मन के बहुते रंग हैं, छिन छिन बदलें सोय।
एक रंग में जो रहे, ऐसा बिरला कोय॥ ४॥
कबीर यह मन लालची, समझे नहीं गँवार।
भजन करन को आलसी, खाने को हुशियार॥ ५॥
यह तो गति है अटपटी, सटपट लखे न कोय।
जो मन की खटपट मिटे, चटपट दर्शन होय॥ ६॥

माया

झीनी माया जिन तजी, मोटी गई बिलाय।
ऐसे जन के निकट से, सब दुख गयो हिराय ॥ १ ॥
आस आस जग फंदिया, रहे ऊर्ध लिपटाय।
गुरु आसा पूरन करें, सकल आस मिट जाय ॥ २ ॥
कबीर माया मोहनी, जैसी मीठी खाँड़।
सतगुरु की किरपा हुई, नातर करती भाँड़ ॥ ३ ॥
गुरु को छोटा जानकर, दुनिया आगे दीन।
जीवन को राजा कहें, माया के आधीन ॥ ४ ॥
जिनको साँई रँग दिया, कभी न होय कुरंग।
दिन दिन बानी आगरी, चढ़े सवाया रंग ॥ ५ ॥

काम

चलो चलो सब कोई कहे, पहुँचे बिरला कोय।
एक कनक और कामिनी, दुरगम घाटी दोय ॥ १ ॥
कामी क्रोधी लालची, इनसे भक्ति न होय।
भक्ति करे कोई सूरमा, जाति बरन कुल खोय ॥ २ ॥
भक्ति बिगाड़ी कामियाँ, इन्द्री केरे स्वाद।
हीरा खोया हाथ से, जन्म गँवाया बाद ॥ ३ ॥
काम काम सब कोइ कहे, काम न चीन्हे कोय।
जेती मन की कल्पना, काम कहावें सोय ॥ ४ ॥
काम क्रोध सूतक सदा, सूतक लोभ समाय।
सील सरोवर न्हाइये, तब यह सूतक जाय ॥ ५ ॥
जहाँ काम तहाँ नाम नहिं, जहाँ नाम नहिं काम।
दोनों कबहूँ न मिलें, रबि रजनी इक ठाम ॥ ६ ॥
कामिन काली नागिनी, तीनों लोक मँझार।
नाम सनेही ऊबरे, बिषयी खाये झार ॥ ७ ॥
एक कनक और कामिनी, बिषफल किये उपाय।
देखे ही तें विष चढ़े, चाखत ही मर जाय ॥ ८ ॥

कामी तो निर्भय भया, करे न कबहूँ संक।
इन्द्रिन केरे बस पड़ा, भोगे नर्क निसंक ॥ ९ ॥

क्रोध

क्रोध अग्नि घर घर बढ़ी, जलै सकल संसार।
दीन लीन निज भक्ति में, तिनके निकट उबार ॥ १ ॥
जक्त माहिं धोखा घना, अहं क्रोध और काल।
पार पहूँचा मारिये, ऐसा जम का जाल ॥ २ ॥
गारि अँगारा क्रोध झल, निंद्या धूआँ होय।
इन तीनों को परिहरै, साध कहावे सोय ॥ ३ ॥
जग में बैरी कोइ नहीं, जो मन सीतल होय।
यह आपा तू डारि दे, दया करे सब कोय ॥ ४ ॥
ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करे, आपा सीतल होय ॥ ५ ॥
खोद खाद धरती सहे, काट कूट बनराय।
कुटिल बचन साधू सहे, और से सहा न जाय ॥ ६ ॥

मान

कंचन तजना सहज है, सहज त्रिया का नेह।
मान बड़ाई ईरषा, दुरलभ तजनी येह ॥ १ ॥
माया तजा तो क्या हुआ, मान तजा नहिं जाय।
मान बड़े मुनिबर गले, मान सबन को खाय ॥ २ ॥
ऊँचे पानी ना टिके, नीचे ही ठहराय।
नीचे होय सो भर पिये, ऊँच पियासा जाय ॥ ३ ॥
लेने को सतनाम है, देने को अनदान।
तरने को है दीनता, डूबन को अभिमान ॥ ४ ॥

शील

ज्ञानी ध्यानी संजमी, दाता सूर अनेक।
जपिया तपिया बहुत हैं, शीलवंत कोइ एक ॥ १ ॥

सुख का सागर शील है, कोई न पावे थाह।
शब्द बिना साधू नहीं, द्रव्य बिना नहिं शाह ॥ २ ॥

संतोष

साध संतोषी सर्वदा, निर्मल जिनके बैन।
तिनके दरस अरु परस तें, जिव उपजे सुख चैन ॥ १ ॥
चाह मिटी चिंता गई, मनुआँ बेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिये, सोई शाहंशाह ॥ २ ॥
अनमाँगा तो अति भला, माँग लिया नहिं दोष।
उदर समाना माँग ले, निश्चय पावे मोष ॥ ३ ॥

क्षमा

जहाँ दया तहाँ धर्म है, जहाँ लोभ तहाँ पाप।
जहाँ क्रोध तहाँ काल है, जहाँ क्षमा तहाँ आप ॥ १ ॥

साँच

साधू ऐसा चाहिये, साँची कहे बनाय।
कै टूटे कै फिर जुड़ै, बिन कहे भरम न जाय ॥ १ ॥
साँचे श्राप न लागई, साँचे काल न खाय।
साँचे को साँचा मिले, साँचे माहिं समाय ॥ २ ॥
जाकी साँची सुरत है, ताका साँचा खेल।
आठ पहर चौंसठ घड़ी, साईं सेती मेल ॥ ३ ॥

निंदा

दोष पराया देख कर, चले हसंत हसंत।
अपने याद न आवईं, जिनका आदि न अंत ॥ १ ॥
निंदक दूर न कीजिये, कीजे आदर मान।
निरमल तन मन सब करे, बके आन ही आन ॥ २ ॥

बिनती

औगुनहारा गुन नहीं, मन का बड़ा कठोर।
ऐसे समरथ सतगुरू, ताहि लगावें ठौर ॥ १ ॥

सुरत करो मेरे साइयाँ, हम हैं भौजल माहिं।
आपे ही बहि जायँगे, जो नहिं पकड़ो बाँहि ॥ २ ॥
जो मैं भूल बिगाड़िया, नाकर मैला चित्त।
साहब गरुआ लोड़िये, नफ़र बिगाड़े नित्त ॥ ३ ॥
मैं अपराधी जनम का, नख सिख भरा बिकार।
तुम दाता दुख भंजना, मेरी करो सम्हार ॥ ४ ॥
क्या मुख ले बिनती करूँ, लाज आवत है मोहि।
तुम देखत औगुन करूँ, कैसे भाऊँ तोहि ॥ ५ ॥

तीरथ

तीरथ ब्रत कर जग मुआ, ठंडे पानी न्हाय।
सत्तनाम जाने बिना, काल जुगनजुग खाय ॥ १ ॥
न्हाये धोये क्या भया, जो मन में मैल समाय।
मीन सदा जल में रहे, धोये बास न जाय ॥ २ ॥
कोटि कोटि तीरथ करे, कोटि कोटि करे धाम।
जब लग साध न सेइहै, तब लग काँचा काम ॥ ३ ॥

मूरत

पाहन पानी मत पूजिये, सेवा जासी बाद।
सेवा कीजे साध की, सत्तनाम कर याद ॥ १ ॥
कबीर दुनिया देहरे, सीस नवावन जाय।
हिरदे माहीं गुरु बसें, तू ताही सों लौ लाय ॥ २ ॥

आहार

खट्टा मीठा चरपरा, जिभ्या सब रस लेय।
चोर और कुतिया मिल गई, पहरा किसका देय ॥ १ ॥
अहार करे मन भावता, जिभ्या केरे स्वाद।
नाक तलक पूरन भरे, को कहिये परशाद ॥ २ ॥

निद्रा

कबीर सोया क्या करे, उट्ठ न रोवे दुक्ख।
जाका बासा गोर में, सो क्यों सोवे सुक्ख ॥ १ ॥

सोता साध जगाइये, करे नाम का जाप।
यह तीनों सोते भले, साकित सिंह और साँप ॥ २ ॥
जागन से सोवन भला, जो कोई जाने सोय।
अंतर लौ लागी रहै, सहजै सुमिरन होय ॥ ३ ॥
जागत में सोवन करे, सोवन में लौ लाय।
सुरत डोर लागी रहै, तार टूट नहिं जाय ॥ ४ ॥

व्यापकता

ज्यों नैनन में पूतली, त्यों खालिक घट माहिं।
मूरख लोग न जानहीं, बाहर ढूँढ़न जाहिं ॥ १ ॥
ज्यों तिल माहीं तेल है, ज्यों चकमक में आग।
तेरा प्रीतम तुज्झ में, जाग सके तो जाग ॥ २ ॥
पुहुप मध्य ज्यों बास है, व्याप रहा सब माहिं।
संतों माहीं पाइये, और कहूँ कुछ नाहिं ॥ ३ ॥

नाम

हीरा परखे जौहरी, शब्द को परखे साध।
जो कोई परखे साध को, ताका मता अगाध ॥ १ ॥
सभी रसायन हम करी, नहीं नाम सम कोय।
रंचक घट में संचरे, सब तन कंचन होय ॥ २ ॥
जबही नाम हिरदे धरा, भयो पाप को नाश।
मानों चिनगी आग की, पड़ी पुरानी घास ॥ ३ ॥

उपदेश

कथा कीरतन करन की, जाके निस दिन रीत।
कहें कबीर वा दास से, निश्चय कीजे प्रीत ॥ १ ॥
कथा कीरतन रात दिन, जाके उद्यम येह।
कहें कबीर ता साध की, हम चरनन की खेह ॥ २ ॥

मिश्रित

जाके मन बिस्वास है, सदा गुरू हैं संग।
कोटि काल झकझोरई, तऊ न हो चित भंग ॥ १ ॥

जाको राखे साँइयाँ, मार न सक्के कोय।
बाल न बाँका कर सकै, जो जग बैरी होय ॥ २ ॥
प्रीति बहुत संसार में, नाना बिधि की सोय।
उत्तम प्रीति सो जानिये, जो सतगुरु से होय ॥ ३ ॥

तुलसी साहब के दोहे

दिना चार का खेल है, झूठा जक्क पसार।
जिन बिचार पति ना लखा, बूड़े भौजल धार ॥ १ ॥
एक भरोसा एक बल, एक आस बिस्वास।
स्वाँति सलिल गुरु चरन हैं, चात्रिक तुलसीदास ॥ २ ॥
तुलसी या संसार में, पाँच रतन हैं सार।
साधसंग सतगुरु सरन, दया दीन उपकार ॥ ३ ॥
पढ़ि पढ़ि के सब जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई अच्छर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय ॥ ४ ॥

दादू साहब

बिपति भली गुरु संग में, काया कसौटी दुक्ख।
नाम बिना किस काम के, दादू सम्पति सुक्ख ॥ १ ॥

चरनदास

सतगुरु के ढिंग जायके, सन्मुख खावे चोट।
चकमक लग पथरी झड़े, सकल जलावे खोट ॥ १ ॥
सतगुरु शब्दी तीर हैं, तन मन कीयो छेद।
बेदर्दी समझे नहीं, बिरही पावे भेद ॥ २ ॥
प्रेम बराबर जोग नहिं, प्रेम बराबर ज्ञान।
प्रेम भक्ति बिन साधवा, सबही थोथा ध्यान ॥ ३ ॥
पिया चाहो कै मत चहो, मैं तो पिया की दास।
पिया के रँग राती रहूँ, जग से रहत उदास ॥ ४ ॥

सहजो बाई

ज्यों तिरिया पीहर बसे, सुरत रहे पिउ माहिं।
ऐसे जन जग में रहे, गुर को भूले नाहिं॥ १॥

भाग ८

(१)

मसनवी

मैं सतगुर पै डालूँगी तन मन को वार।
मैं चरनों पै क़ुरबान हूँ बार बार॥ १॥
करूँ कैसे उनकी दया का बयान।
दिया मुझ को प्रेम और परतीत दान॥ २॥
खुली आँख जब मुझको आया नज़र।
कि दुनिया है धोखे की जा सर बसर॥ ३॥
ज़मीन और ज़न और ज़र की है चाह।
सभी जीव रहते हैं ख़्वार और तबाह॥ ४॥
हुए मुब्तिला दाम हिरसो हवस।
न पावें कहीं चैन वह एक नफ़स॥ ५॥
न मालिक का ख़ौफ़ और न मरने का डर।
न खोजें कभी अपने घर की खबर॥ ६॥
करें फ़िकर मेहनत से दुनिया के काम।
रहें इस्तिरी और धन के ग़ुलाम॥ ७॥
जो दुनिया के नामावरी के हैं काम।
दिलो जाँ से उसमें पचें हैं मुदाम॥ ८॥
भरा हैगा भोगों की ख़्वाहिश से मन।
उसी में लगाते हैं धन और तन॥ ९॥
न शरमो हया उनको मा बाप की।
न कुछ फ़िकर है पुन्न और पाप की॥ १०॥

जो मन इन्दिरी पावें लज़्ज़ात को।
ग़नीमत समझते हैं इस बात को॥ ११॥
जो दुनिया के सामाँ मुयस्सर हुए।
हुए ख़ुश दिल और मान में सब मुए॥ १२॥
नहीं जीव का अपने उनको ख़याल।
कि मरने पै क्या होयगा उसका हाल॥ १३॥
कहाँ से वह आता है जाता कहाँ।
कहाँ कौन है मालिके जिस्मो जाँ॥ १४॥
कोई जो कहाते हैं परमारथी।
जो देखा तो वह हैं निपट स्वारथी॥ १५॥
करें ज़ाहिरी पाठ पूजा मुदाम।
सुनें भागवत और गीता तमाम॥ १६॥
मगर दिल पै उनके न होवे असर।
न मरने का ख़ौफ़ और न नरकों का डर॥ १७॥
करें तीरथ और यात्रा शौक़ से।
रक्खें बरत और दान दें ज़ौक़ से॥ १८॥
मगर होवे दुनिया का मतलब ज़रूर।
रहे है यही आस हिरदय में पूर॥ १९॥
जो दुनिया की कुछ आस होवे नहीं।
तो इस काम में पैसा ख़रचें नहीं॥ २०॥
जो मालिक का भेद इनसे कहवे कोई।
उड़ावें हँसी और न माने कभी॥ २१॥
भरा हैगा मन उनका शुबहात से।
न बाचें जहालत की आफ़ात से॥ २२॥
वह संतों के कहने को मानें नहीं।
सफ़ा बुद्धि से बात तोलें नहीं॥ २३॥
कहूँ क्या कि दिल में हैं वे नास्तिक।
मगर धन के लेने को हैं आस्तिक॥ २४॥

होवे ऐसे जीवों का कैसे निबाह।
जहन्नुम की अग्नी में पावेंगे दाह ॥ २५ ॥
वहाँ हाथ मल मल के पछतायँगे।
किये अपने कामों का फल पायँगे ॥ २६ ॥
मदद कोई उनकी करेगा नहीं।
कोई इनका रोना सुनेगा नहीं ॥ २७ ॥
पकड़ इनको जमदूत देवेंगे मार।
सरप इनकी गरदन में देवेंगे डार ॥ २८ ॥
अगिन खंभ से बाँध देंगे इन्हें।
अगिन कुंड में ग़ोता देंगे इन्हें ॥ २९ ॥
निहायत दुखी होके चिल्लायँगे।
यह ग़फ़लत का फल अपना यों पायँगे ॥ ३० ॥
निरख करके जीवों का अस हाल ज़ार।
सन्त आये दुनिया में औतार धार ॥ ३१ ॥
दया कर सुनावें उन्हें घर का भेद।
मेहर से करें दूर करमों का खेद ॥ ३२ ॥
राह घर के जाने की देवें लखा।
सुरत शब्द मारग का देवें पता ॥ ३३ ॥
हर एक घट में आवाज़ होती मुदाम।
वही शब्द की धुन है और वोही नाम ॥ ३४ ॥
सुने जो कोई धुन को चित धरके प्यार।
वही जीव घर जावे तिरलोकी पार ॥ ३५ ॥
सुनो भेद मंज़िल का अब राह के।
वह हैं सात बालाय छः चक्र के ॥ ३६ ॥
यह हैं नाम छै चक्करों के सुनो।
गुदा इन्दरी और नाभी गिनो ॥ ३७ ॥
चकर चौथा हिरदय गुलू पाँचवाँ।
छठा दोनों आँखों के है दरमियाँ ॥ ३८ ॥

इसी जा पै है सुर्त रूह का क़याम।
परे इसके सन्तों के सातों मुक़ाम ॥ ३९ ॥
सहसदल है पहला गगन दूसरा।
सुन्न पर महासुन का मैदाँ बड़ा ॥ ४० ॥
गुफा लोक चौथा है सोहंग नाम।
परे इसके सतलोक आली मुक़ाम ॥ ४१ ॥
अलख लोक की क्या कहूँ दस्तगाह।
अगम लोक सन्तों का है तख़्तगाह ॥ ४२ ॥
परे इसके है कुल्ल मालिक का धाम।
अपार और अनन्त राधास्वामी है नाम ॥ ४३ ॥
अकह और अगाध और यही है अनाद।
यहीं से उठी मौज और आद नाद ॥ ४४ ॥
नहीं कोइ जाने है यह भेद सार।
रहे थक के सब कोइ गगना के वार ॥ ४५ ॥
करम और धरम में रहे सब अटक।
नहीं जी के कल्यान की कुछ खटक ॥ ४६ ॥
रहे पूजते देवी देवा को झाड़।
न मालिक का खोज और न दिल में पियार ॥ ४७ ॥
रहें पिछली टेकों में भूले मुदाम।
नहीं जानें महिमा गुरू और नाम ॥ ४८ ॥
अगर चाहो तुम अपना सच्चा उधार।
तो सतगुर को जल्दी से लो खोज यार ॥ ४९ ॥
बचन सन्त सतगुरु के चित दे सुनो।
प्रीत और परतीत हिरदय धरो ॥ ५० ॥
पियो चरनअमृत को तुम प्रीत से।
भरम काटो परशादी के सीत से ॥ ५१ ॥
करो उनका सतसंग तुम बार बार।
लेवो शब्द मारग का उपदेश सार ॥ ५२ ॥

करो मन से मालिक का सुमिरन मुदाम।
परमपुरुष राधास्वामी है उसका नाम ॥ ५३ ॥
गुरू रूप का ध्यान हिरदय में लाय।
सुरत और मन शब्द धुन से लगाय ॥ ५४ ॥
यह अभ्यास नित घट में करना सही।
कटें मन के औगुन इसी से सभी ॥ ५५ ॥
कोई दिन में दरशन गुरू के मिलें।
सुने शब्द की धुन सुरत मन खिलें ॥ ५६ ॥
इसी तरह नित घट में आनन्द पाय।
बढ़त जाय आनन्द मन शान्ति लाय ॥ ५७ ॥
कोई दिन में मुक्ति का पावे सरूर।
तू हो जाय तन मन से न्यारा ज़रूर ॥ ५८ ॥
प्रीत और परतीत दिन दिन बढ़े।
तेरे मन में गुरु प्रेम का रँग चढ़े ॥ ५९ ॥
उमँग कर तू सतगुरु की सेवा करे।
प्रेम अंग ले नित्त आरत करे ॥ ६० ॥
मिले प्रेम की तुझ को दौलत अपार।
सरावेगा भागों को तब अपने यार ॥ ६१ ॥
किया अब यह उपदेश का खत्म राग।
जो माने उसी का जगे पूरा भाग ॥ ६२ ॥
करोगे जो हित चित से नित तुम यह कार।
करें राधास्वामी तुम्हारा उधार ॥ ६३ ॥
जपो प्रीत से नित्त राधास्वामी नाम।
पाओ मेहर से एक दिन आदि धाम ॥ ६४ ॥

(२)

बारहमासा

आया मास असाढ़ बिरह के बादल घट छाये।
नैनन झड़ता नीर मेघ ज्यों रिम झिम बरखाये।
अन्न और पानी नहिं भावे।
हर दम पिया की याद बिकल चित चहुँ दिस को धावे।
खटक दर्शन की हिये साले।
बिन प्रीतम दीदार नहीं मन कोइ बिधि कर मानें॥ १॥

लागा सावन मास घुमड़ घन चहुँ दिस रहा बरखाय।
सुन सुन पपिहा बोल बिरहनी रही जिय में घबराय।
तपन हिय में उठती भारी।
ढूँढ़त रही पिया धाम खोज कर बैठी थक हारी।
भेख और पण्डित जग भरमान।
निज घर सुद्ध न लाय रहे सब माया सँग अटकान॥ २॥

तीजा भादों मास बिरह की दौं लागी भारी।
देखत अस अस हाल पिया आये संत रूप धारी।
सहज में मोहि दर्शन दीन्हा।
घर का भेद बताय दया कर मोहि अपना कीन्हा।
शब्द की घट में राह लखाय।
सतगुरु चरन अधार सुरत मन धुन सँग देत चढ़ाय॥ ३॥

आया मास कुआर सुरत गुरु चरनन में लागी।
दिन दिन सेवा करत प्रीत हिये अंतर में जागी।
रूप गुरु लागे अति प्यारा।
सुनती चित से बचन अमीं की ज्यों बरसे धारा।
हिये के मैल भरम निकसे।
मगन हुई मन माहिं फूल की कलियाँ ज्यों बिगसे॥ ४॥

कातिक काया ताक सुरत मन घर की सुध धारी।
गुरु स्वरूप धर ध्यान शब्द धुन सुनती झनकारी।
निरख घट अंतर उजियारी।
अचरज लीला देख होत अब तन मन सुखियारी।
गुरू की बढ़ती नित परतीत।
छिन छिन दया निहार उमँगती नई नई भगती रीत॥ ५॥

अगहन अघ सब कटे सुरत मन निरमल होय आये।
मेहर करी गुरुदेव तोड़ तिल नभ ऊपर धाये।
सुनी वहाँ घंटा शंख पुकार।
सहसकमल के माहिं निरख रही निरमल जोत उजार।
हिय से गुरु महिमा गाती।
निरखत दया अपार चरन पर नित बल बल जाती॥ ६॥

माया जाड़ा लाग पूस में मुरझाया काला।
सुन धुन गगना पूर सुरत मन झट चढ़ गए बाला।
मेघ जहाँ गरजत घोरम घोर।
बाजत धुन मिरदंग काल दल धर भागा घर छोड़।
सुरत गुरु दर्शन कर हरखाय।
छूटे कर्म कलेश दया गुरु छिन छिन रही गुन गाय॥ ७॥

माघ महीना लाग खिलत रही चहुँ दिस फुलवारी।
बेनी तीर चढ़ाय सुरत गई तिरलोकी पारी।
खेल रही हंसन सँग कर प्यार।
मान सरोवर न्हाय सुनत रही किंगरी सारँग सार।
सिखर चढ़ गई महासुन पार।
सिंह नाग को टार भँवरगढ़ पहुँची सतगुरु लार॥ ८॥

फागुन फाग रचाय पुरुष सँग खेलत सुर्त होरी।
मुरली बीन बजाय काल से कुल नाता तोड़ी।
मची सतपुर में अचरज धूम।

जुड़ मिल आये हंस हरख कर आरत गावें घूम।
प्रेम रँग भींज रहे सब कोय।
अचरज शोभा पुरुष निहारत चरनन सुरत समोय॥ ९॥

चैत महीना चेत अधर की सुध ले सुर्त चाली।
पुरुष दई दुरबीन अलख पुर पहुँची दरहाली।
मगन होय दरस अलख पुर्ष पाय।
अरबन रवि उजियार पुरुप के इक इक रोम लजाय।
खबर ले ऊपर को धाई।
अगम पुरुप दरबार निरख छबि अद्भुत हरखाई॥ १०॥

आया मास बैसाख चित्त में बाढ़ा अनुरागा।
अगम लोक के पार ध्यान राधास्वामी चरनन लागा।
सुरत चली धीरे से पग धार।
निरखा अजब प्रकाश द्वार पर रवि शशि नहीं शुमार।
लखा जाय हैरत रूप अनाम।
अकह अपार अनंत परम गुरु संतन का निज धाम॥ ११॥

सब से जेठा धाम आदि में वहीं से सुर्त आई।
काल जाल की फाँस फँसी तन मन सँग दुख पाई।
मिलें कोई सतगुरु परम उदार।
कर उनका सतसंग प्रेम से तब होवे निरबार।
दीन दिल चरन सरन धारे।
सुरत शब्द की राह अधर घर चढ़ जावे पारे॥ १२॥

बारह मास पुकार संत की निज महिमा गाई।
सूरत शब्द लगाय मिलन का रस्ता बतलाई।
भाग बढ़ अपना क्या गाऊँ।
मिल गए राधास्वामी दयाल दई मोहि निज चरनन ठाऊँ।
जिऊँ मैं राधास्वामी आधारे।
चरनन सुरत लगाय गाऊँ मैं धन धन स्वामी प्यारे॥ १३॥

(३)

अरे मन भूल रहा जग माहिं।
पकड़ता क्यों नहिं सतगुरु बाँह ॥ १ ॥

भरमता निस दिन भोगन लार।
मान धन स्त्री संग पियार ॥ २ ॥

मोह में जग के रहा भरमाय।
लोभ और काम संग लिपटाय ॥ ३ ॥

सार नरदेही नहिं जानी।
पशू सम बरते अज्ञानी ॥ ४ ॥

खौफ़ मालिक का हिये नहिं लाय।
गया अब जम के हाथ बिकाय ॥ ५ ॥

मौत की याद बिसार रहा।
जगत को सत कर जान रहा ॥ ६ ॥

न सुनता मूरख गुरु की बात।
बुद्धि मैली सँग गोता खात ॥ ७ ॥

न छोड़े मन की कुटिलाई।
गुरू सँग करता चतुराई ॥ ८ ॥

गुरू समझावें बारम्बार।
शब्द गुरु धारो हिये पियार ॥ ९ ॥

होत तेरे घट में धुन हर दम।
सुरत से सुनो चित्त कर सम ॥ १० ॥

धार यह सुन घर से आती।
अमी रस बरखत दिन राती ॥ ११ ॥

पकड़ कर चढ़ो सुन्न दस द्वार।
वहाँ से सत पद धरो पियार ॥ १२ ॥

निरख सतपुर में सतपुर्ष रूप।
अलख और अगम लखो कुल भूप ॥ १३ ॥

परे लख राधास्वामी पुर्ष अनाम।
वहीं है संतन का निज धाम॥ १४॥
होय तब कारज तेरा पूर।
काल और महाकाल रहें झूर॥ १५॥
भेद यह गावें गुरू दयाल।
मेहर से तुझको करें निहाल॥ १६॥
न माने भागहीन उन बात।
भरम और संशय सँग भरमात॥ १७॥
फँसा मन माया की फाँसी।
कुमति ने डाली हिये गाँसी॥ १८॥
रहा फिर 'हौं' 'मैं' संग बँधाय।
प्रीत गुरु प्रेमी सँग नहिं लाय॥ १९॥
नीच मन होय न साँचा दीन।
मान मद हिरदे में भर लीन॥ २०॥
कहो कस छूटें ऐसे जीव।
प्रेम बिन कस पावें सच पीव॥ २१॥
काल की खावें निस दिन मार।
रोग और सोग संग बीमार॥ २२॥
करें जो राधास्वामी अपनी मेहर।
हटावें काल करम का क़हर॥ २३॥
सरन में ज्यों त्यों कर लावें।
सुरत मन तब धुन रस पावें॥ २४॥
बने कोई दिन में तब इन काज।
प्रेम का पावें अद्भुत साज॥ २५॥
मेहर राधास्वामी बिन कुछ नहिं होय।
चरन में उनके सुरत समोय॥ २६॥
भजो नित राधास्वामी नाम दयाल।
होंय तब निरबल मन और काल॥ २७॥

धीर गहि भक्ति भजन करना।
रूप राधास्वामी हिये धरना ॥ २८ ॥
बढ़ाना नित चरनन में प्रीत।
पकाना नित्त घट में गुरु परतीत ॥ २९ ॥
बने जब डौल करो सतसंग।
करो तन मन से सेव उमंग ॥ ३० ॥
लगे तब तुम्हरा थल बेड़ा।
चरन राधास्वामी हिये हेरा ॥ ३१ ॥
होश कर चेतो अब तन में।
सरन गहो राधास्वामी अब मन में ॥ ३२ ॥
नहीं तो भरमो चौरासी।
सहो तुम फिर फिर जम फाँसी ॥ ३३ ॥
भूल और ग़फ़लत अब छोड़ो।
चरन में राधास्वामी मन जोड़ो ॥ ३४ ॥
समझ यह दीनी खोल सुनाय।
कोई बड़भागी माने आय ॥ ३५ ॥
मेहर राधास्वामी की पावे।
जतन करके घर को जावे ॥ ३६ ॥
हुआ यह निज उपदेश तमाम।
गाऊँ मैं छिन छिन राधास्वामी नाम ॥ ३७ ॥

पुस्तकों का सूचीपत्र

ये पुस्तकें मैनेजर पब्लीकेशन्स, दयालबाग (आगरा) से मिल सकती हैं।

	नाम		मूल्य
	परम गुरु स्वामीजी महाराज रचित		
१	सारबचन (पद्य)	हिन्दी	७.००
२	सारबचन (गद्य)	,,	३.००
	परम गुरु हुज़ूर महाराज रचित		
३	राधास्वामी मत प्रकाश	अंगरेज़ी	१.५०
४	पिलग्रिम्स पाथ (हुज़ूर महाराज के पत्र)	,,	१.५०
५	राधास्वामी मत संदेश	हिन्दी	१.००
६	राधास्वामी मत उपदेश	,,	१.००
७	निज उपदेश	,,	१.००
८	प्रेम उपदेश	,,	१.००
९	सार उपदेश	,,	१.२५
१०	प्रश्नोत्तर	,,	१.००
११	जुगत प्रकाश	,,	२.००
१२	प्रेमबानी भाग १	,,	५.००
१३	,, भाग २	,,	५.००
१४	,, भाग ३	हिन्दी	५.००
१५	,, भाग ४	,,	३.००
१६	प्रेमपत्र भाग १	,,	४.००
१७	,, भाग २	,,	४.००
	परम गुरु महाराज साहब रचित		
१८	डिस्कोर्सेज़ आन राधास्वामी फ़ेथ	अंगरेज़ी	५.००
	परम गुरु सरकार साहब रचित		
१९	प्रेम-समाचार	हिन्दी	१.२५
	राधास्वामी सतसंग सभा के स्वत्वाधिकार में अनुवादित पुस्तकें		
२०	राधास्वामी मत प्रकाश (हुज़ूर महाराज रचित)	बंगला	१.२५
२१	अमृतबचन (परम गुरु महाराज साहब रचित पुस्तक 'डिस्कोर्सेज़ आन राधास्वामी फ़ेथ' का अनुवाद)	,,	३.००
	परम गुरु स्वामीजी महाराज रचित		
२२	सारबचन	अंगरेज़ी	३.२५

	नाम		मूल्य
	परम गुरु हुज़ूर महाराज रचित		
२३	प्रेम पत्र भाग १	अंगरेज़ी	६.००
२४	,, भाग २	,,	६.००
२५	,, भाग ३	,,	६.००
२६	,, भाग ४	,,	६.००
२७	,, भाग ५	,,	६.००
२८	,, भाग ६	,,	२.००
२९	राधास्वामी मत उपदेश	,,	१.००
३०	राधास्वामी मत संदेश	,,	१.००
	हुज़ूर साहबजी महाराज रचित		
३१	यथार्थ प्रकाश भाग १ (विशेष संस्करण)	,,	६.००
३२	,, (साधारण संस्करण)	,,	३.५०
३३	,, भाग २	,,	५.५०
३४	,, भाग ३ (प्रथम पुस्तक)	,,	५.५०
३५	,, (द्वितीय पुस्तक)	,,	५.००
३६	जिज्ञासा	,,	१.००
३७	राधास्वामी मत दर्शन	,,	१.००
३८	प्रेम संदेश	,,	१.००
३९	डिस्कोर्सेज भाग १ (सतसंग के उपदेश)	,,	४.००
४०	,, भाग २	,,	४.५०
४१	,, भाग ३	,,	३.२५
४२	जतन प्रकाश	,,	१.००
४३	सिलैक्शन्स फ्राम प्रेम सन्देश	,,	१.००

राधास्वामी सतसंग सभा के स्वत्वाधिकार में सम्पादित या लिखित पुस्तकें

४४	फ़ोर लैटर्स (हुज़ूर सरकार साहब)	,,	१.००
४५	सिलवरी स्पीचेज़	,,	०.२५
४६	शब्द संग्रह भाग १	हिन्दी	३.५०
४७	,, ,, भाग २	,,	४.००
४८	संत बानी संग्रह भाग १	,,	१.००
४९	संत बानी संग्रह भाग २	हिन्दी	१.२५
५०	रत्नावली	,,	१.००
५१	दयालबाग़ पैम्फ्लेट (छोटा)	अंगरेज़ी	०.५०